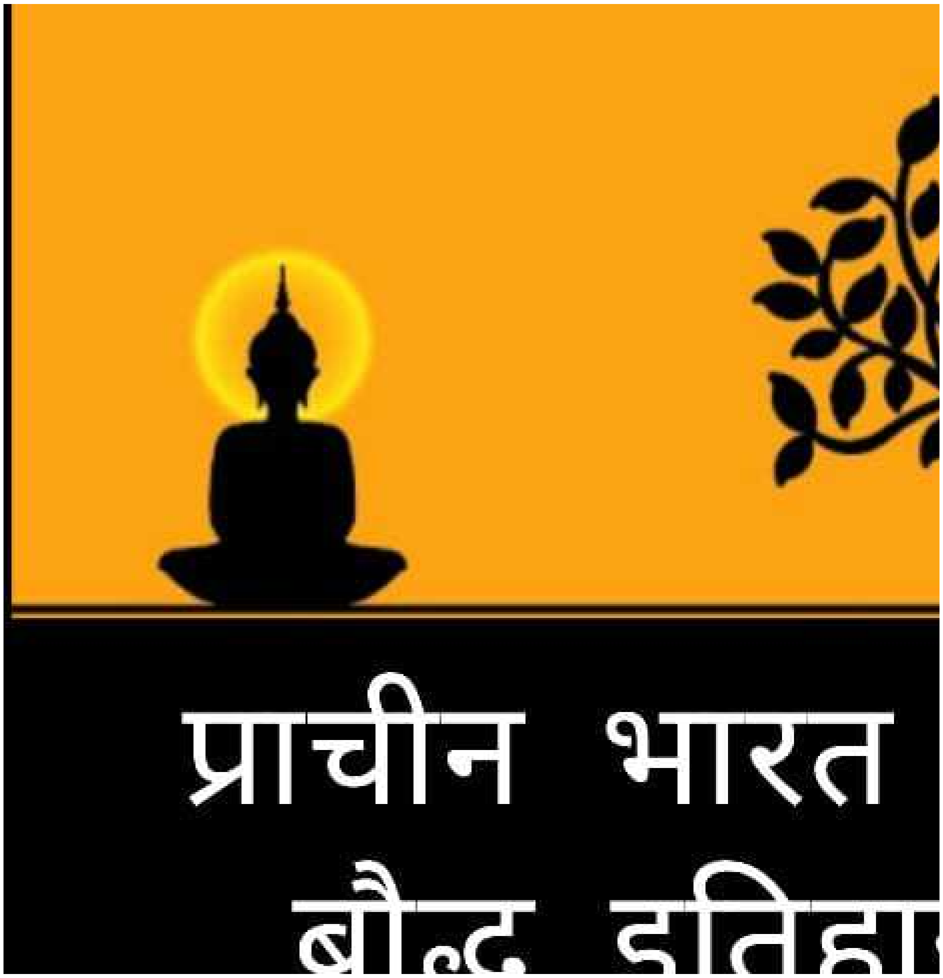


प्राचीन भारत का बौद्ध इतिहास



डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह


प्राचीन भारत

प्राचीन भारत का बौद्ध इतिहास

डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह

भूमिका

प्राचीन भारत का बौद्ध इतिहास मूलतः बौद्ध गतिविधियों को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसीलिए यह इतिहास राजवंशों के हिसाब से नहीं बल्कि बौद्ध धाराओं में रेखांकित किया गया है। फिर बौद्ध गतिविधियों की संपूर्ण धारा को समझने के लिए इसे उप धाराओं में विभाजित किया गया है, मिसाल के तौर पर : स्तूपों की धारा, बुद्धों की धारा, बौद्ध राजाओं की धारा आदि। स्तूपों की धारा में सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर पाल और गहड़वाल वंश तक के स्तूपों की धारा को पहचानने की कोशिश की गई है। बुद्धों की धारा में 28 बुद्धों की धारा की परख की गई है। पुरातात्विक सबूतों से पूर्व बुद्धों की जाँच की गई है।

निश्चित रूप से पुस्तक प्राचीन भारत पर केंद्रित है। मगर प्राचीन भारत का इसमें नया मूल्यांकन है। नए औजारों से पुराने भारत का उत्खनन किया गया है। नए प्रकार के उत्खनन से जो तथ्य उभरकर आए हैं, वे इतिहास में नहीं हैं। जो तथ्य इतिहास में हैं, यदि वह सिर के बल खड़े हैं तो उसे इसमें पैरों के बल खड़ा किया गया है।

शिलालेखों को नए सिरे से पढ़ा गया है। जहाँ पाठ उल्टा है, वहाँ सीधा कर दिया गया है। कई बौद्ध राजवंशों को इतिहास में जगह नहीं मिली है, उसे जगह दी गई है। पुरातत्व पर अधिक बल है, साहित्यिक गप्पों को किनारे कर दिया गया है। कई राजवंशों का धर्म चोरी हुई है, उसे बरामद किया गया है। जिन बौद्ध - स्थलों की लूट हुई है, उन पर कड़ी नजर रखी गई है।

भ्रामक अनुवाद पर, छेड़छाड़ पर, शब्दों की हेराफेरी पर चौकसी बरती गई है। प्राचीन भारत का बौद्ध इतिहास पूरी तरह से पहरे में लिखा गया है। आशा है, पाठकों को ऐसा इतिहास पसंद आएगा, जो इतिहास में नहीं है।

लॉकडाउन, 2020

डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह
गाँधी नगर, सासाराम
(बिहार)

विषय - सूची

✽ हर अध्याय के अंत में संबंधित चित्र दिए गए हैं।

स्तूपों की परंपरा

इतिहास - लेखन में इतिहासकार कुछ जोड़ते हैं, कुछ छोड़ते हैं और कुछ का चयन करते हैं। यह छोड़ना, जोड़ना और चयन ही इतिहास का स्वरूप तय करता है। फिर तो तय है कि ऐसा इतिहास - लेखन पूरी मानव - जाति का इतिहास नहीं हो सकता है।

वास्तविकता का इतिहास और इतिहासकारों के उपलब्ध इतिहास में फर्क होता है। जैसा कि कहा गया है कि इतिहास - लेखन में इतिहासकार कुछ छोड़ते हैं, कुछ जोड़ते हैं और कुछ का चयन करते हैं और फिर इसे ही किसी देश के इतिहास की संज्ञा प्रदान कर दिया करते हैं। ऐसा इतिहास वस्तुतः राजनीतिक शक्ति मात्र का इतिहास होता है जो भारी पैमाने पर हुई हत्याओं तथा अपराधों के इतिहास से भिन्न नहीं है।

चिनुआ अचैबी ने लिखा है कि जब तक हिरन अपना इतिहास खुद नहीं लिखेंगे, तब तक हिरनों के इतिहास में शिकारियों की शौर्य - गाथाएँ गाई जाती रहेंगी।

इसीलिए भारत के इतिहास में वैदिक संस्कृति उभरी हुई है, बौद्ध सभ्यता पिचकी हुई है और मूल निवासियों का इतिहास बीच - बीच में उखड़ा हुआ है।

इतिहास सिर्फ वो नहीं है, जिसे शासकों ने लिखवाया है और जो लिखा गया है बल्कि इतिहास वो भी है, जिसे हमारे पुरखों ने सहा है, लेकिन लिखा नहीं गया है।

छद्म इतिहास क्या है?

इतिहास - लेखन में वह दावा जो इतिहास की तरह प्रस्तुत किया जाता है, पर वह इतिहास नहीं होता है बल्कि इतिहास जैसा होता है, वह छद्म इतिहास है।

छद्म इतिहास और वास्तविक इतिहास की पहचान करना ही सही इतिहास - दृष्टि है।

2.

यह विचित्र इतिहास - बोध है कि सिंधु घाटी की सभ्यता के बाद वैदिक युग आया। सिंधु घाटी की सभ्यता नगरीय थी, जबकि वैदिक संस्कृति ग्रामीण थी। उल्टा है।

भला कोई सभ्यता नगरीय जीवन से ग्रामीण जीवन की ओर चलती है क्या?

सिंधु घाटी में बड़े - बड़े नगर थे, स्नागार थे, चौड़ी - चौड़ी सड़कें थीं। बेहद उम्दा किस्म की सभ्यता थी। वहीं वैदिक युग में पशुचारक थे, कच्ची मिट्टी के घर थे, नरकूलों की झोंपड़ियाँ थीं। तुर्रा यह कि ये नरकूलों की झोंपड़ियाँ उसी पश्चिमोत्तर भारत में उगीं, जहाँ बड़े -बड़े सिंधु साम्राज्य के भवन थे।

आपको ऐसा इतिहास - बोध उलटा नहीं लगता है?

आप पढ़ाते हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता में लेखन - कला विकसित थी और फिर उसके बाद की वैदिक संस्कृति में पढ़ाने लगते हैं कि वैदिक युग में लेखन - कला का विकास नहीं हुआ था। वैदिक युग में लोग मौखिक याद करते थे और लिखते नहीं थे।

ऐसा भी होता है क्या? पढ़ी - लिखी सभ्यता अचानक अनपढ़ हो जाती है क्या?

आप यह भी पढ़ाते हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता में मूर्ति - कला थी। फिर उसके बाद पढ़ाते हैं कि वैदिक युग में मूर्ति - कला नहीं थी।

क्या यह सब उलटा नहीं है?

भारत में स्तूप - स्थापत्य, लेखन - कला, मूर्ति - कला, बर्तन - कला आदि का विकास निरंतर हुआ है। कोई गैप नहीं है। यदि इतिहास में ऐसा गैप आपको दिखाई पड़ रहा है तो वह वैदिक संस्कृति को भारतीय इतिहास में ऐडजस्ट करने के कारण दिखाई पड़ रहा है।

यह कैसा इतिहास - लेखन है कि जिन वेदों के खुद का ही ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त नहीं हैं, उन्हें ही ऐतिहासिक साक्ष्य मान लिया गया है।

ऋग्वैदिक युग, फिर उत्तर वैदिक युग, फिर सूत्रों का युग, फिर महाकाव्यों का युग, फिर धर्मशास्त्रों का युग - ये भारत का भौतिक इतिहास नहीं है।

ये तो संस्कृत साहित्य का इतिहास है। किसी भी देश का भौतिक इतिहास ऐसे नहीं लिखा जाता है, लिखा भी नहीं गया है। साहित्य का इतिहास ऐसे लिखा जाता है।

वैदिक युग सही मायने में इतिहास का टर्मिनोलॉजी है ही नहीं ! कहीं पढ़े हैं बाइबिल युग, कुरान युग?

वैदिक युग, महाकाव्य युग और सूत्र युग मूलतः इतिहास का नहीं बल्कि संस्कृत साहित्य के चैप्टर्स हैं वरना दुनिया के इतिहास में किसी देश का ऐतिहासिक चैप्टर्स के नाम बाइबिल युग, कुरान युग और हदीस युग नहीं हैं।

वैदिक भाषा पुरानी है और वैदिक संस्कृति भी पुरानी है, तब इस तथ्य की भी पड़ताल की जानी चाहिए कि वैदिक युग के तथाकथित सोने के सिक्के " निष्क " और चाँदी के सिक्के " रजत " कहाँ गए, जबकि धातु के सिक्के सबसे पहले गौतम बुद्ध के युग में मिलते हैं, जिसे " आहत मुद्रा " कहा जाता है।

3.

आज का अध्ययन जबकि पुरावशेषों में फ्लोरीन की मात्रा के मापन, काठ कोयले और हड्डी में रेडियोधर्मिता की मात्रा, भूचुंबकीय अवलोकन और वृक्ष - तैथिकी पर आधारित है, तब सत्ययुग या द्वापर जैसे भोथरे काल मापक से किसी नायक या वस्तु की उम्र तय करना निरर्थक है।

मिसाल के तौर पर, वेदों की रचना सृष्टि के आरंभ में हुई है। केतु वृक्ष 1100 योजन ऊँचे हैं। देवताओं का एक वर्ष मनुष्यों के 131521 दिनों का होता है।

ऐसे मामलों में भारत का भौतिक इतिहास ताम्र, कांस्य, लौह जैसी धातुओं और धूसर, काले, गेरुए जैसे मृद्भांडों की राह पकड़ेगा। मगर सावधानी की जरूरत यहाँ भी है।

आपने एक बार झूठ बोल दिया है कि हड़प्पा सभ्यता के बाद उत्तरी भारत में वैदिक युग आया है। अब इसे साबित करने के लिए आप दूसरा झूठ बोल रहे हैं कि उत्तरी भारत में ताम्र युग के बाद सीधे लौह युग आ गया।

आपने कांस्य युग की सभ्यता को वैदिक युग की झूठी तोप से उड़ा दिया।

पश्चिमोत्तर भारत में ताम्र युग के बाद कांस्य युग आया था। सिंधु घाटी की सभ्यता कांस्य युग का प्रतीक है। मगर पूर्वी भारत में इतिहासकारों ने ताम्र युग के बाद सीधे लौह युग ला दिया और वे कांस्य युग को खा गए।

जब लोहे की खोज नहीं हुई थी, तब लोग ताँबे को ही लोहा कहा करते थे।

ताँबे को लोहा इसलिए कहते थे कि ताँबे का रंग लोहित होता है।

लोहित का अर्थ है - लाल रंग का। लाल रंग का कौन होता है - ताँबा या लोहा ?

जाहिर है कि लाल रंग का ताँबा होता है। इसलिए लोग ताँबे को लोहा कहते थे।

लोहा से ही लहू शब्द बना है। लहू का अर्थ है - खून। खून के रंग का कौन होता है - ताँबा या लोहा?

पालि में ताँबे को लोह (लोहा) भी कहा गया है। अर्थात पालि तब की है, जब लोहे की खोज नहीं हुई थी। तब सरसरी नजर से ही पालि का इतिहास उत्तरी भारत में ईसा से हजार साल पहले छलाँग मार देता है।

4.

स्तूपों का इतिहास, लेखन -कला का इतिहास, मूर्ति-कला का इतिहास सभी कुछ सिंधु घाटी सभ्यता से निरंतर मौर्य काल और आगे तक जाता है।

बशर्ते कि आप मान लीजिए कि सिंधु साम्राज्य से लेकर मौर्य साम्राज्य और आगे तक टूटती - जुड़ती बौद्ध सभ्यता की कड़ियाँ थीं।

भारत में मौजूद सभी स्तूपों को मौर्य काल के बाद का बताया जाना गलत है। अनेक स्तूप सिंधु घाटी सभ्यता के काल के हैं, कुछ सिंधु घाटी सभ्यता के बाद के हैं, कुछ मौर्य काल के हैं, कुछ मौर्य काल के बाद के भी हैं।

कहीं मिट्टी का स्तूप है, कहीं पत्थर का स्तूप है, कहीं ईंट का स्तूप है तो कहीं संगमरमर का स्तूप है। मनौती स्तूप ... छोटा स्तूप ... मझोला स्तूप ... बड़ा स्तूप ... गोल स्तूप ... चौकोर स्तूप ... अति प्राचीन स्तूप ... प्राचीन स्तूप ...वेदी का स्तूप ...बिना वेदी का स्तूप ... सीढ़ीदार स्तूप ... बिना सीढ़ी का स्तूप !

सभी अलग - अलग प्रकार के सैकड़ों स्तूपों को इतिहासकारों ने मौर्य काल से लेकर कुषाण काल के चंद पन्नों में समेट लिया है।

जबकि इतिहास गवाह है कि सिंधु घाटी सभ्यता में भी स्तूप था और पूर्व मौर्य काल में भी स्तूप था। पिपरहवा का स्तूप मौर्य काल से पहले का है। खुद मौर्य काल में नए स्तूप बने और कई पूर्व मौर्य काल के स्तूपों की मरम्मत हुई, जिसमें निग्लीवा सागर का स्तूप शामिल है।

अभिलेखीय साक्ष्य पुख्ता सबूत देता है कि सम्राट अशोक से पहले भी स्तूपों की परंपरा थी।

आप सम्राट अशोक के निग्लीवा अभिलेख को पढ़ लीजिए, जिसमें लिखा है कि अपने अभिषेक के 14 वें वर्ष में उन्होंने निगाली गाँव में जाकर कोनागमन (कनकमुनि) बुद्ध के स्तूप के आकार को वर्धित करवाया था। (चित्र - 1)

कनकमुनि (कोनागमन) बुद्ध का स्तूप सम्राट अशोक के काल से पहले बना था, जिसका संवर्धन उन्होंने कराया था। गौतम बुद्ध से कनकमुनि बुद्ध अलग थे और पहले थे।

भारत और भारत के बाहर जो बड़े पैमाने पर स्तूप मिलते हैं, वे सभी मौर्य काल के बाद के नहीं हैं बल्कि अनेक सिंधु घाटी और मौर्य काल के बीच के भी हैं। मगर इतिहासकार गौतम बुद्ध से पहले स्तूप होने की बात सोचते ही नहीं हैं।

परिणामतः वे मौर्य काल से पहले के बने सभी स्तूपों को भी खींचकर मौर्य काल तथा उसके बाद लाते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते तो सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर मौर्य काल तक कहीं भी स्तूपों की श्रृंखला नहीं टूटेगी।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियों को आठ भागों में बाँटा गया तथा उन पर स्तूपों का निर्माण किया गया। जाहिर है कि स्तूपों की निर्माण - कला बुद्ध से पहले भी मौजूद थी।

बुद्ध ने खुद महापुरुषों की शरीर धातु पर स्तूप बनाने को कहा था। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनंद को चौराहे पर स्तूप निर्मित करने की बात कही थी।

कोई भी शिल्प - कला रातों -रात पैदा नहीं होती है। स्तूप - कला का भी बाकायदे विकास हुआ है। कई पीढ़ियों ने, कई गणों ने इसके विकास में अपना - अपना योगदान किया है।

दुनिया की टॉप अकादमिक पत्रिकाओं में " साइंस " शुमार है। इसे अमेरीकन एसोसिएशन फॉर दि एडवांस आॅफ साइंस प्रकाशित करता है।

" साइंस " के अंक 320 में यूनिवर्सिटी ऑफ नेपल्स, इटली के भारत और सेंट्रल एशिया की सभ्यताओं के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता प्रोफेसर जिओवान्नि वेरार्डी का मुअनजोदड़ो के स्तूप पर एक लेख छपा है। (चित्र - 2)

पुरातत्ववेत्ता वेरार्डी ने गहन जाँच के बाद बताए हैं कि सिंधु घाटी सभ्यता का स्तूप कोई 2100 ई. पू. का है। स्तूप के नाम को लेकर विवाद हो सकता है। मगर वह इमारत सिंधु घाटी सभ्यता के समकालीन है। यह स्तूप भिक्षुओं के आवास से घिरा है।

आर डब्ल्यू टी एच आकिन विश्वविद्यालय, जर्मनी के पुरातत्ववेत्ता माइकल जेंसन ने वेरार्डी की रिसर्च पर मुहर लगाते हुए लिखा है कि मुअनजोदड़ो का स्तूप सिंधु घाटी सभ्यता के काल का है।

पुरातत्ववेत्ता द्वय ने कहा है कि सिंधु घाटी सभ्यता पर पुनर्विचार करने की जरूरत है क्योंकि यह स्तूप कुषाण काल का नहीं है।

इसीलिए मैं भी कहता हूँ कि सिंधु घाटी की सभ्यता मूलतः बौद्ध सभ्यता है।

जैसा कि भारत और सेंट्रल एशिया की सभ्यताओं के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता प्रोफेसर जिओवान्नि वेरार्डी ने जाँचोपरांत बताया है कि मुअनजोदड़ो का स्तूप सिंधु घाटी की सभ्यता के समय का है। यह कुषाण कालीन नहीं है।

अब तक इतिहासकार इसे कुषाण कालीन मानते रहे हैं। कारण कि स्तूप के पूरबी बौद्ध मठ से कुषाण कालीन सिक्के मिले हैं।

प्रोफेसर जिओवान्नि वेरार्डी ने कहा है कि स्तूप के काल - निर्धारण में इन सिक्कों की कोई खास भूमिका नहीं है। स्तूप का अस्तित्व सिक्कों से अलग है।

स्तूप की निर्माण-सामग्री, अभिकल्पन, ईंटें, प्लेटफार्म - सब कुछ सिंधु घाटी सभ्यता के समकालीन हैं। (चित्र - 3)

चूँकि कुषाण काल बौद्धों के लिए सुनहरा काल था। बौद्धों को पता रहा होगा कि मुअनजोदड़ो का स्तूप किसी पूर्व बुद्ध का है।

शायद यहीं कारण था कि उनकी आवाजाही उस स्तूप तक थी और ऐसे में वहाँ कुषाण कालीन सिक्कों का मिलना असंभव नहीं है।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में विशाल स्नानागार मिला है। स्नानागार के आँगन में जलाशय है। जलाशय के तीन ओर बरामदे और उनके पीछे कई कमरे थे।

इतिहासकार मैके ने बताया है कि कमरे वाला स्नानागार पुरोहितों के लिए था, जबकि विशाल स्नानागार सामान्य जनता के लिए था तथा इसका उपयोग धार्मिक समारोहों के अवसर पर किया जाता था।

डी. डी. कोसंबी ने लिखा है कि पूरे ऐतिहासिक युग में ऐसे कृत्रिम ताल बनाए गए हैं : पहले स्वतंत्र रूप में, बाद में मंदिरों के समीप।

सवाल उठता है कि सिंधु घाटी के लोग विशेष धार्मिक अवसरों पर विशाल स्नानागार में पुरोहितों के संग स्नान तथा शुद्धिकरण करके कहाँ जाते थे? मंदिर तो था नहीं। वहीं स्तूप में! स्नानागार के बगल के स्तूप में !!

उत्तरी बिहार के वैशाली में पुरातत्वविदों ने आनंद स्तूप के बगल में ठीक ऐसा ही विशाल स्नानागार खोज निकाला है, जैसा कि मोहनजोदड़ो में है।

1826 में मैसन ने पहली बार हड़प्पा में स्तूप ही देखा था, बर्नेस (1831) और कनिंघम (1853) ने भी स्तूप ही देखा था। सिंधु घाटी की सभ्यता की खुदाई बाद में हुई।

राखालदास बंदोपाध्याय ने भी 1922 में मोहनजोदड़ो के बौद्ध स्तूप की खुदाई में ही सिंधु घाटी की सभ्यता की खोज की थी।

इसलिए; सिंधु घाटी की सभ्यता की खुदाई में स्तूप नहीं मिला है बल्कि स्तूप की खुदाई में सिंधु घाटी की सभ्यता मिली है।

मगर इतिहासकारों को सिंधु घाटी की सभ्यता के इतिहास को ऐसे लिखने में जाने क्या परेशानी है, जबकि सच यही है।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में सिर्फ स्तूप ही नहीं, बौद्ध विहार भी मिला था, जिसका विवरण स्वामी शंकरानंद ने " हिस्ट्री आफ मोहनजोदड़ो एण्ड हड़प्पा " में प्रस्तुत किया है। लिखा है कि राखालदास बंदोपाध्याय को 1922 - 23 के शरद मौसम में खुदाई करते एक बौद्ध विहार मिला। विहार का मुख पूरब की तरफ था। पूरबी भाग में दो बड़े सामान्य कक्ष, एक प्रवेश द्वार, गुफानुमा सुरंग, मूर्ति कक्ष एवं सीढ़ियाँ हैं। कुछ छोटे कक्षों का उपयोग भिक्खुओं के अवशेष रखने के लिए किया जाता है। कमरा सं. 22, 27 एवं 29 ऐसे ही कमरे हैं।

(संदर्भ: बौद्ध धर्म: हड़प्पा मोहनजोदड़ो नगरों का धर्म, पृ. 144)

गुजरात स्थित धोलावीरा सिंधु घाटी सभ्यता का एक महत्वपूर्ण नगर है। यहाँ स्तूप मिले हैं। उनमें से एक पंजाब स्थित संघोल के धम्म चक्र स्तूप से मेल खाता है। ऐसे स्तूपों में आरे (वृत में तिल्ली) बने होते हैं। (चित्र- 4)

स्तूप का नाम सुनते ही दिमाग में एक अर्द्ध गोलाकार संरचना की तस्वीर उभरती है।

मगर हर जगह का स्तूप अर्द्ध गोलाकार नहीं है।स्तूप धम्म चक्क के आकार के भी हैं, जिनमें आठ आरे बने हुए हैं। धम्म चक्क में भी 8 आरे हैं।

एक दूसरे स्तूप में आरों की संख्या क्रमशः 12, 24 और 32 है। 24 और 32 की संख्या अशोक - चक्र की याद दिलाती है। अशोक - चक्र में भी 32 और 24 आरे हैं।

ऐसे स्तूप पंजाब के जिला फतेहगढ़ साहिब के गाँव संघोल में मिले हैं। कभी संघोल में भिक्षु संघ था। इसीलिए इसका नाम संघोल है। (चित्र - 5)

स्तूप की खुदाई 1968 में हुई थी। स्तूप से एक सोप पत्थर की मंजूषा मिली है।

मंजूषा के ढक्कन पर खरोष्ठी लिपि में एक बौद्ध स्कॉलर का नाम लिखा है। वह स्कॉलर भद्रक थे। उन्हीं का अस्थि - भस्म उस मंजूषा में है।

धोलावीरा का स्तूप संघोल के स्तूप से मेल खाता है।

सिंध साम्राज्य के अनेक नगरों में स्तूप मिले हैं। हड़प्पा में स्तूप मिला है, मोहनजोदड़ो में स्तूप मिला है और फिर धोलावीरा में भी स्तूप मिला है।

जाने क्यों, इतिहासकार बताते हैं कि ये स्तूप कुषाण काल के हैं। भाई, कुषाण काल तो बुद्ध की मूर्तियों के लिए जाना जाता है। यदि सिंधु घाटी सभ्यता के ये स्तूप कुषाणों ने बनवाए तो वे सिर्फ स्तूप ही क्यों बनवाते?

वे तो सिंधु घाटी की गली - गली में ... हर चौक - चौराहे पर बुद्ध की मूर्तियाँ बनवाते। वे तो गांधार कला के आविष्कारक थे और बुद्ध की मूर्तियों के लिए तो कुषाण राजे इतिहास में जाने जाते हैं।

यदि सिंध साम्राज्य के ये स्तूप कुषाण काल के हैं तो कुषाणों से करीब डेढ हजार साल पहले तो आपके अनुसार आर्य आए थे, जो सिंध साम्राज्य पर कब्जा किए। फिर वे सिंधु घाटी के डगर - डगर में मंदिर, अवतारों की मूर्तियाँ क्यों नहीं बनवाए?

मान लीजिए कि 1500 ई. पू. में आर्यों का आक्रमण हुआ और हड़प्पा - मुअनजोदड़ो नेस्तनाबूद हो गए। सिंध साम्राज्य जीत लिया गया और आर्य साम्राज्य स्थापित हो गया तो क्या सिंध साम्राज्य के ऊपरी लेयर पर आर्य साम्राज्य के निशान मिलते हैं?

क्या मंदिर मिलते हैं ? ... क्या संस्कृत मिलती है ? ... कोई वैदिक देवी - देवता मिलते हैं? ...क्या इंद्र वंश का शासन आया?... क्या वरूण वंश का राज आया?... नहीं।

6.

इतिहासकार मौर्य साम्राज्य पर शुंगों के कब्जे को ही आर्य आक्रमण बताते हैं और उसे पीछे खींचकर 1500 ई. पू. में ले जाते हैं क्योंकि इसके बाद धीरे- धीरे आर्य- सभ्यता के तमाम निशान मिलने लगते हैं ... संस्कृत ... यज्ञ ... मंदिर आदि- आदि।

वैदिक साहित्य में लिखित " दास " कौन है?

भारत और पश्चिम के अनेक इतिहासकारों ने " दास " की अनेक व्याख्याएँ की हैं। उस भूल - भुलैया में हमें नहीं पड़ना है।

दास मूल रूप से " बौद्ध " थे। साँची और भरहुत के स्तूपों पर अनेक दास तथा दासी उपाधिधारक बौद्धों के शिलालेख हैं, जिन्होंने स्तूप - निर्माण में मदद की थी।

अरहत दास थे ....अरहत दासी थीं ....यमी दास थे.... जख दासी थीं .....अनेक ...सभी के नाम लिखे हुए हैं।

साँची स्तूप पर थूप दास का वर्णन है। लिखा है - मोरगिरिह्मा थूपदासस दान थंभे। (चित्र - 6)

थूप दास मोरगिरि (महाराष्ट्र) के निवासी थे और भरहुत के एक स्तंभ - निर्माण में मदद की थी।

वैदिक साहित्य में वर्णित आर्यों का सांस्कृतिक संघर्ष इन्हीं बौद्ध दास - दासियों से हुआ था।

वैदिक साहित्य इन दास - दासियों के बारे में बताता है कि ये लोग यज्ञ नहीं करते और न ये इंद्र - वरुण की पूजा करते हैं...स्पष्ट है कि ये बौद्ध हैं।

प्राकृत भाषा में " दास " (दसन) का अर्थ द्रष्टा है। मगर आर्यों ने सांस्कृतिक दुश्मनी के कारण अपनी पुस्तकों में " दास " का अर्थ " गुलाम/ नौकर " कर लिए हैं।

दास और आर्यों का यह सांस्कृतिक संघर्ष 1500 ई.पू. में नहीं बल्कि मौर्य काल के बाद हुआ था।

सभी शिलालेख पढ़ जाइए। मौर्य काल तक किसी भी पुरुष और महिला के नाम में " दास / दासी " नहीं जुड़ा है।

दास/ दासी जुड़े नाम शिलालेखों में मौर्य काल के बाद दिखाई पड़ते हैं। साँची - भरहुत के स्तूपों पर पहली बार अनेक नाम दास / दासी से जुड़े दिखाई पड़ते हैं।

दास / दासी से जुड़े ये सभी नाम बौद्धों के हैं।

इन्हीं दास / दासियों से आर्यों का वैचारिक संघर्ष हुआ था, जो वेदों में लिखा हुआ है।

वेदों में लिखे आर्य - दास संघर्ष को हम कतई मौर्य काल से पहले नहीं ले जा सकते हैं। कारण कि मौर्य काल तक हमें दास/ दासी उपाधि धारक कोई नाम मिलता ही नहीं है।

वेद और वेदों में वर्णित यह सांस्कृतिक संघर्ष की गाथा मौर्य काल के बाद की है।

यहीं कारण है कि ऋग्वेद में भी स्तूपों के संदर्भ मिलते हैं और रामायण में चैत्यों के मिलते हैं।

यह तो बहुत बताया जाता है कि ऋग्वेद में गंगा का एक बार और यमुना का तीन बार वर्णन है, मगर यह बहुत कम बताया जाता है कि ऋग्वेद में स्तूप का वर्णन दो बार है।

संस्कृत का स्तूप मूल रूप से पालि थूप का बिगड़ा हुआ रूप है। पालि में थूप से अनेक शब्द बनते हैं जैसे थूप, थूपिका, थूपीकत, थूपारह आदि।

मगर संस्कृत में स्तूप से अनेक शब्द नहीं बनेंगे। कारण कि स्तूप संस्कृत के लिए बाहरी शब्द है। किसी भी भाषा में अमूमन बाहरी शब्द बाँझ होते हैं। उनमें शब्दों को जनने की क्षमता नहीं होती है।

संस्कृत के लिए स्तूप बाँझ शब्द है। इसीलिए संस्कृत का स्तूप पालि थूप का रूपांतरण है और वे भाष्यकार जो ऋग्वेद में प्राप्त स्तूप की व्याख्या किसी अन्य अर्थ में करते हैं, वे गलत हैं।

"स्तूप ....बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः"

अर्थात इसमें बुद्ध अन्तर्निहित हैं।

यह ऋग्वेद के प्रथम मंडल, सूक्त 24, छठवाँ अनुवाक का श्लोक संख्या 7 है। इसमें राजा वरुण को अबौद्ध (अबुध्ने) राजा भी कहा गया है। पूरा का पूरा अर्थ एक दूसरे से जुड़ा हुआ है।

सायण भाष्य में अर्थ कुछ भिन्न है।

"अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः नीचीना स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥७॥" (चित्र - 7)

अर्थात पवित्र पराक्रम युक्त राजा वरुण (सबको आच्छादित करने वाले) दिव्य तेज पुञ्ज सूर्यदेव को आधाररहित आकाश में धारण करते हैं। इस तेज पुञ्ज सूर्यदेव का मुख नीचे की ओर और मूल ऊपर की ओर है। इससे मध्य में दिव्य किरणें विस्तीर्ण होती चलती हैं।

परन्तु यह अर्थ जो सायण भाष्य पर आधारित है, गलत है। लगभग सभी अनुवादकों ने ऐसा ही अर्थ किया है। अर्थ करते वक्त संदर्भ को देखना जरूरी होता है। जैसा कि उपरोक्त से स्वतः स्पष्ट है कि वरुण राजा की उपाधि अबुध्ने है। मतलब कि वरुण बौद्ध विरोधी राजा थे। आगे स्तूप को उलटने की बात है।

अशोक द्वारा 84000 स्तूप बनाए जाने का जिक्र फाहियान ने अपने यात्रा - विवरण के 27 वें खंड में किए हैं।

साँची एवं भरहुत स्तूपों का निर्माण मूल रूप से अशोक ने ही कराया था। ह्वेनसांग ने अशोक द्वारा निर्मित अनेक स्तूपों का उल्लेख किया है, जिन्हें उसने खुद देखा था।

सारनाथ तथा तक्षशिला स्थित धर्मराजिका स्तूप का निर्माण भी मूलतः अशोक के समय में ही कराया गया था। बाद के शासकों ने उन्हें परिवर्धित करवाए।

मीनाण्डर यवन थे। विदेशी थे। लेकिन धम्म की राह चुनी थी। बुतकारा स्तूप के पहले लेयर को अशोक ने बनवाए थे तो दूसरे को मीनाण्डर ने बनवाए थे। दूसरे लेयर से मीनाण्डर का सिक्का मिला है।

मीनाण्डर बड़े दार्शनिक थे...इंडो -यूनानी इतिहास में दूजा नहीं हुआ।

सो वे बड़े न्यायप्रिय थे। न्यायप्रियता ने इन्हें जनता में बड़ी शोहरत दिलाई थी।

एक दिन एक शिविर में अचानक इनकी मृत्यु हुई।

प्लूटार्क ने लिखा है कि मीनाण्डर के भस्म को लेकर जनता में झगड़े उठ खड़े हुए ....क्योंकि वे इतना जनप्रिय थे कि लोग उनके भस्म पर अलग - अलग स्तूप बनाना चाहते थे।

भारत के इतिहास में बुद्ध के बाद मीनाण्डर, मीनाण्डर के बाद कबीर और कबीर के बाद नानक का नाम आता है, जिनके मृत शरीर को भी अपनाने के लिए जनता व्याकुल थी।

क्षेमेन्द्र रचित अवदानकल्पलता से पता चलता है कि मीनाण्डर ने अनेक स्तूपों का निर्माण कराया था।

सम्राट अशोक के बाद पश्चिमोत्तर तथा उत्तरी भारत में सर्वाधिक स्तूप बनवाने का श्रेय कनिष्क को है।

उन्होंने विभिन्न स्थानों पर अनेक स्तूप बनवाए। पेशावर के निकट कनिष्क ने एक बड़ा स्तूप बनवाए थे, जिसमें बुद्ध के अवशेष रखे गए थे। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसे एक यूनानी इंजीनियर अगिलस ने बनाया था।

जाहिर है कि यूनानी अभियंताओं ने यूनानी तकनीक का प्रयोग किया। यहीं ग्रीको - बुद्धिस्ट कला है, जिससे स्तूप - निर्माण भी अछूता नहीं रहा।

गंधार क्षेत्र के स्तूपों का वास्तु - विन्यास मध्य भारतीय स्तूपों जैसा नहीं है। गंधार स्तूप काफी ऊँचे हैं, चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ हैं और संपूर्ण स्तूप एक बुर्ज जैसा दिखाई देता है।

कनिष्क के पुरुषपुर स्थित 400 फीट ऊँचा स्तूप का विवरण फाहियान तथा ह्वेनसांग दोनों ने दिए हैं। फाहियान ने लिखा है कि उसने जितने भी स्तूप देखे थे, उनमें यह सर्वाधिक प्रभावशाली है।

तक्षशिला स्थित धर्मराजिका स्तूप का निर्माण अशोक के समय में हुआ, किंतु कनिष्क के समय में आकारवर्धन हुआ। ऊँचे चबूतरे पर निर्मित यह स्तूप गोलाकार है। चारों दिशाओं में चार सीढ़ियाँ हैं। (चित्र - 8)

कनिष्क के काल में बल्ख तथा खोतान तक अनेक स्तूप निर्मित करवाए गए थे। मनिक्याल क्षेत्र में कई स्तूप बने थे। मनिक्याल, रावलपिंडी से 20 मील की दूरी पर है। यहाँ से प्राप्त एक अभिलेख से पता चलता है कि कनिष्क के 18 वें वर्ष में इन स्तूपों को बनवाया गया था।

सिर्फ बुद्ध के अवशेषों पर ही नहीं बल्कि कनिष्क ने बौद्ध साहित्य की टीकाओं को भी ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करा कर विशेष रूप से निर्मित एक स्तूप में सुरक्षित रखवाया था। ह्वेनसांग ने इस पर विस्तार से लिखा है।

स्तूप- निर्माण की परंपरा अशोक और कनिष्क के बाद हर्षवर्धन के शासन-काल में सर्वाधिक समृद्ध हुई।

सम्राट हर्षवर्धन ने विक्रमादित्य की नहीं बल्कि शीलादित्य की उपाधि धारण की थी। शीलादित्य वह है, जिसे विक्रम (बल) से अधिक शील पसंद हो।

वहीं शील जिसे बुद्ध ने अपनी देशना में प्रमुख स्थान दिया था।

वो शिलादित्य ऐसे शीलवान निकले कि हर 5 वें वर्ष अपना संपूर्ण खजाना गरीबों-असहायों को दान कर देते थे।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि उन्होंने गंगा के किनारों पर कई हजार स्तूप सौ - सौ फीट ऊँचे बनवाए।

सब स्थानों पर जहाँ - जहाँ गौतम बुद्ध के कुछ भी चिह्न थे, संघाराम स्थापित किए।

इतिहास से सवाल है कि आखिर शीलादित्य के बनवाए हजारों स्तूप और संघाराम कहाँ गए?

ह्वेनसांग ने पूर्वी भारत में अशोक द्वारा निर्मित ताम्रलिप्ति, कर्णसुवर्ण, समतट और पुण्ड्रवर्धन में स्तूपों का उल्लेख किया है। महास्थानगढ़ अभिलेख से भी यह पुष्ट होता है। बाद के पाल शासकों ने पूर्वी भारत में बौद्ध धर्म का संरक्षण प्रदान किए।

पश्चिम बंगाल, झारखंड और बिहार में पाल कालीन अनेक स्तूपों के अवशेष मिलते हैं।

पाल वंश के बड़े राजाओं में देवपाल (810 - 850) शुमार हैं। उत्साही बौद्ध थे। 40 बरसों का शासन था। सुजाता स्तूप का आखिरी पुनर्निर्माण इन्होंने ने ही कराए थे। वहाँ के उत्खनन से प्राप्त एक अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है। (चित्र - 9)

पश्चिमोत्तर और उत्तरी भारत में स्तूप - निर्माण की जो परंपरा सिंधु घाटी सभ्यता से चली थी, वह पाल कालीन पूर्वी भारत में 12 वीं सदी तक अनवरत चलती रही।

7.

बौद्ध सभ्यता के प्रचार - प्रसार का जो काम उत्तर के मौर्यों ने किया, वही काम दक्षिण में सातवाहनों ने किया।

अशोक के सभी अभिलेख प्राकृत में हैं तो सातवाहनों के भी सभी अभिलेख प्राकृत में हैं।

उत्तर में मौर्य काल तक संस्कृत के अभिलेख नहीं मिलते हैं तो दक्षिण में भी सातवाहन काल तक संस्कृत के अभिलेख नहीं मिलते हैं।

मौर्यों ने अनेक स्तूप, चैत्य और विहार बनवाए तो सातवाहनों ने भी अनेक स्तूप, चैत्य और विहार बनवाए।

अमरावती, गोली, जगय्यपेटा, घंटसाल, भट्टीप्रोलु, नागार्जुन कोंडा जैसे स्थानों के स्तूप इन्हीं सातवाहनों के हैं। (चित्र- 10)

बौद्ध स्थलों में से पूर्वोत्तर भारत स्थित बौद्ध स्मारकों का जिक्र कम होता है। हिंदी इतिहासों में इसका उल्लेख नगण्य है।

त्रिपुरा के सेपहीजाला जिले में बोक्सानगर है। बोक्सानगर का प्राचीन नाम अभिलेखों के आधार पर बिराक बताया जाता है। यह एक विराट बौद्ध स्थल है।

इस विराट बौद्ध स्थल को खुदाई से पहले मानसा का स्मारक कहा जाता था। मानसा सर्पों की देवी हैं। साल 1997 के जुलाई महीने में पुरातत्वविद डॉ. जीतेन्द्र दास यहाँ आए। उन्हें यहाँ गौतम बुद्ध की मूर्ति मिली। वे अनुमान कर लिए कि बोक्सानगर बौद्ध स्थल है और इसकी सूचना उन्होंने पुरातत्व विभाग को दे दी।

पुरातत्व विभाग ने 2001 से 2004 तक बोक्सानगर की खुदाई की। खुदाई में विशाल बौद्ध स्तूप, चैत्यगृह, बौद्ध विहार, बुद्ध की कांस्य मूर्तियाँ, ब्राह्मी अभिलेखित सील तथा अन्य बौद्ध अवशेष मिले। (चित्र - 11)

स्तूप विशाल और शानदार है। चैत्यगृह आयताकार और स्तूप के पूरब दिशा में है। चैत्यगृह से पूरब बौद्ध विहार है। बौद्ध विहार का गलियारा काफी लंबा है। गलियारा के दोनों ओर भिक्षुओं के लिए कमरे बने हैं।

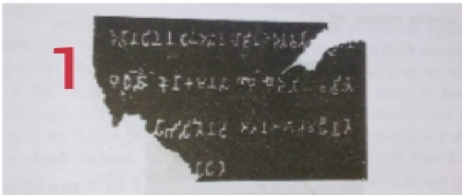
दक्षिण त्रिपुरा में पिलक है। पिलक का प्राचीन नाम पिरोक बताया जाता है। पिलक की पहचान भी बौद्ध स्थल के रूप में हुई है। पिलक के उत्खनन से भी बौद्ध स्तूप और बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

पूर्वोत्तर भारत कभी बौद्ध सभ्यता के प्रभाव में था।

न केवल संपूर्ण भारत में बल्कि भारत के बाहर भी स्तूप बनाए जाने की समृद्ध परंपरा रही है।

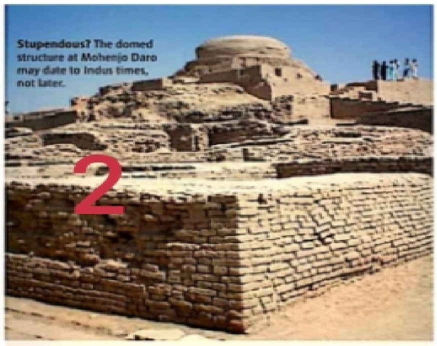
चित्रावली

1



चित्र : कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को दर्शाने वाला निग्लीवा शिलालेख

2



Stupendous? The domed structure at Mohenjo Daro may date to Indus times, not later.

BUDDHIST STUPA OR INDUS TEMPLE?

MOHENJO DARO, PAKISTAN— On the highest mound here rises a ruined dome—the most dramatic structure in the center of the largest Indus city, set in a courtyard once surrounded by buildings. But since the 1920s, archaeologists have considered the dome to be a much later Buddhist stupa ringed by cells of monks, built using Indus bricks 2 millennia after the city's demise. Now, University of Naples archaeologist Giovanni Verardi says that this magnificent structure may actually be a monument from Indus times. If he's right, it will force Indus scholars to rethink the religious and political nature of the civilization, long thought to lack grand temples and palaces (see main text).

The original excavators assumed the dome was Buddhist in large part because buried coins dating to the Kushan Empire of the 2nd and 3rd century C.E. were found at the site. They did note that the stupa was not aligned in typical fashion, that the plinth was of unusual height, and that certain pottery shards predated the Kushan. Verardi, who carefully examined both the site and the original archaeological reports, argues that the coins likely were buried later and therefore are of little value in dating the structures. Based on preliminary excavation of the mound, he even theorizes that the original structure may have been a series of platforms, perhaps similar to the Ur ziggurat in Mesopotamia built around 2100 B.C., near the height of Indus urban life. Such platforms were common from Mesopotamia to Turkmenistan during that era, but none have been clearly identified in the Indus region.

Other scholars are wary of the ziggurat idea but agree that the evidence supporting a stupa is slim. "I'm quite sure Verardi is right," says Michael Jansen of RWTH Aachen University in Germany, who has worked here for years. "We did a very careful survey of the area around the citadel and found not a single Kushan shard." Jansen also notes that Buddhist monks' cells of that period are not usually arranged around a stupa. "What's needed now is careful restudy," says Jansen, who hopes to excavate at the site. After 2 decades, restoration work has at last stabilized the crumbling brick, and officials plan to reopen excavations (see p. 1284). "If it is indeed [Indus], then this will turn our interpretations upside down."

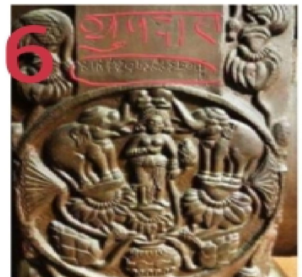
—A.L

Published

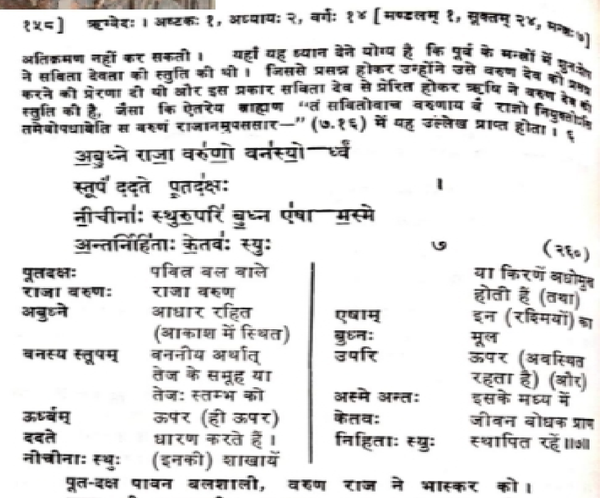
5



6



7



१५८] ऋग्वेदः । अष्टकः १, अध्यायः २, वर्गः १४ [मण्डलम् १, सूक्तम् २४, मन्त्रः ७]

अतिक्रमण नहीं कर सकती । यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्व के मन्त्रों में शुनःशेप ने सविता देवता की स्तुति की थी । जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसे वरुण देव की स्तुति करने की प्रेरणा दी थी और इस प्रकार सविता देव से प्रेरित होकर ऋषि ने वरुण देव की स्तुति की है, जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण "तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञो नियुक्तोऽसि तमेवोपधावेति स वरुणं राजानमुपससार—" (७.१६) में यह उल्लेख प्राप्त होता । ६

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं
स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे
अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ (२६०)

पूतदक्षः	पवित्र बल वाले		या किरणें अधोमुख होती हैं (तथा)
राजा वरुणः	राजा वरुण	एषाम्	इन (रश्मियों) का
अबुध्ने	आधार रहित (आकाश में स्थित)	बुध्नः	मूल
वनस्य स्तूपम्	वननीय अर्थात् तेज के समूह या तेजः स्तम्भ को	उपरि	ऊपर (अवस्थित रहता है) (और)
		अस्मे अन्तः	इसके मध्य में
ऊर्ध्वम्	ऊपर (ही ऊपर)	केतवः	जीवन बोधक प्राण
ददते	धारण करते हैं ।	निहिताः स्युः	स्थापित रहें ॥७॥
नीचीनाः स्थुः	(इनकी) शाखायें		

पूत-दक्ष पावन बलशाली, वरुण राज ने भास्कर को ।

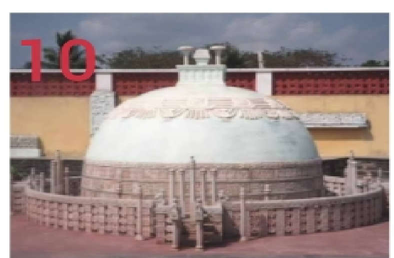
8



9



10



3



हड़प्पीय पुरास्थलों से प्राप्त समाधियों में भी अस्थियों के साथ-साथ पालतू पशु और उनके आभूषण इत्यादि समाधिस्थ होते थे (धौलावीरा से ऐतिहासिक स्तूप के समान एक बड़ी संरचना प्राप्त हुई है। यह संघोल के स्तूप जैसा है। धौलावीरा के उत्खननकर्ता

4



चित्र 1 : स्तूप धौलावीरा, कच्छ, गुजरात, 2500–1750 ई०पू०

11



बुद्धों की परंपरा

गौतम बुद्ध से पहले भी बुद्ध थे। बुद्धवंस, बुद्धवंस की अट्ठकथा, महापदानसुत्त आदि में बुद्धों की परंपरा का वर्णन है। डॉ. भदंत आनंद कौशल्यायन ने " गौतम बुद्ध से पहले के बुद्ध " नाम से पुस्तक भी लिखी है। (चित्र - 12)

देशी और विदेशी दोनों स्रोत बताते हैं कि गौतम बुद्ध के पहले बुद्ध थे। साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत भी बताते हैं कि गौतम बुद्ध से पहले बुद्ध थे।

फाहियान बताता है, श्रीलंकाई- तिब्बती स्रोत बताते हैं, अशोक का निग्लीवा अभिलेख बताता है, भरहुत अभिलेख बताता है, साँची का स्तूप बताता है, अजंता की गुफाएँ बताती हैं, पालि साहित्य बताता है, ये सभी बताते हैं कि बुद्धों की परंपरा रही है।

जब सिख धर्म में 10 गुरूओं की परंपरा हो सकती है तो बौद्ध धर्म में 28 गुरूओं की परंपरा क्यों नहीं हो सकती है?

Name of 28 Buddhas (28 बुद्धों के नाम)

1) Taṇhaṅkara Buddha (तण्हन्कर बुद्ध)

2) Medhaṅkara Buddha (मेधन्कर बुद्ध)

3) Saraṇkara Buddha (सरणंकर बुद्ध)

4) Dīpankara Buddha (दीपंकर बुद्ध)

5) Koṇdañña Buddha (कोण्डिन्य बुद्ध)

6) Maṅgala Buddha (मङ्गल बुद्ध)

7) Sumana Buddha (सुमन बुद्ध)

8) Revata Buddha (रेवत बुद्ध)

9) Sobhita Buddha (सोभित बुद्ध)

10) Anomadassi Buddha (अनोमदस्सी बुद्ध)

11) Paduma Buddha (पदुम बुद्ध)

12) Nārada Buddha (नारद बुद्ध)

13) Padumuttara Buddha (पदमुत्तर बुद्ध)

14) Sumedha Buddha (सुमेध बुद्ध)

15) Sujāta Buddha (सुजात बुद्ध)

16) Piyadassi Buddha (पियदस्सी बुद्ध)

17) Atthadassi Buddha (अत्थदस्सी बुद्ध)

18) Dhammadassī Buddha (धम्मदस्सी बुद्ध)

19) Siddhattha Buddha (सिद्धत्थ बुद्ध)

20) Tissa Buddha (तिस्स बुद्ध)

21) Phussa Buddha (फुस्स बुद्ध)

22) Vipassī Buddha (विपस्सी बुद्ध)

23) Sikhī Buddha (सिखी बुद्ध)

24) Vessabhū Buddha (वेस्सभू बुद्ध)

25) Kakusandha Buddha (ककुसंध बुद्ध)

26) Koṇāgamana Buddha (कोणागमन बुद्ध)

27) Kassapa Buddha (कस्सप बुद्ध)

28) Gotama Buddha (गोतम बुद्ध)

जैसा कि हम जानते हैं कि जातकट्ठकथा (दूरेनिदान 2 - 26) एवं बुद्धवंस (3 - 26) में 24 बुद्धों एवं उनके बोधिवृक्षों का विवरण है। यह विवरण दीपंकर बुद्ध से आरंभ होकर कस्सप बुद्ध पर खत्म हो जाता है।

दीपंकर बुद्ध से पहले के तीन बुद्धों तणहंकर, मेधंकर और सरणंकर का वर्णन इनमें नहीं है। ऐसा कहा गया है कि दीपंकर बुद्ध से पहले के 3 बुद्धों के कोई बोधिसत्व नहीं थे। इसीलिए ये तीनों बुद्ध इनकी सूची से बाहर हैं।

गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के संस्थापक नहीं थे। वे तो बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे। संस्थापक और प्रवर्तक में अंतर होता है।

गौतम बुद्ध ने धर्म चक्र का प्रवर्तन किया था। वे धर्म चक्र के भी संस्थापक नहीं थे।

संस्थापक किसी धर्म की स्थापना करता है, जबकि प्रवर्तक पहले से चले आ रहे किसी धर्म को परिमार्जित करते हुए नए सिरे से चालू करता है।

बौद्ध धर्म गौतम बुद्ध से पहले भी था।

न केवल गौतम बुद्ध के फादर बल्कि उनके फादर इन लॉ भी पहले से ही बौद्ध धारा के थे।

इसलिए गौतम बुद्ध के फादर इन लॉ का नाम सुप्पबुद्ध था। सुप्पबुद्ध नाम बौद्ध धारा का है।

फाहियान ने बताए हैं कि देवदत्त के अनुयायी शाक्य मुनि बुद्ध के प्रति श्रद्धाभाव निवेदित नहीं करते हैं बल्कि वे लोग पहले के तीन बुद्धों में श्रद्धाभाव निवेदित करते हैं, वे बुद्ध थे - ककुसंध, कोणागमन और कस्सप बुद्ध।

फाहियान के यात्रा - काल तक बुद्ध से पहले के बुद्ध की परंपराएँ जिंदा थीं।

भारत में बुद्धों की परंपरा रही है।

एक शाक्यमुनि बुद्ध थे, जिनकी स्मृति में सम्राट अशोक ने रुम्मिनदेई अभिलेख के अनुसार लुंबनी के भूमिकर में कटौती की थी।

एक कोनाकमन बुद्ध थे, जिनकी स्मृति में सम्राट अशोक ने निगलीवा अभिलेख के अनुसार निगालि सागर के स्तूप को दुरुस्त किया था।

एक कस्सप बुद्ध थे, जिनके स्मृति - स्थल को चीनी यात्री फाहियान ने श्रावस्ती के पश्चिम में देखा था।

एक क्रकुच्छंद (ककुसंध) बुद्ध थे,जिनके स्मृति - स्थल को चीनी यात्री फाहियान ने श्रावस्ती के दक्षिण - पश्चिम में देखा था। (चित्र - 13)

यदि सम्राट अशोक के अभिलेख और फाहियान का यात्रा - विवरण झूठ है तो आपका प्राचीन भारत का इतिहास सच कैसे है?

आपने गुप्त काल का इतिहास फाहियान के उस यात्रा - विवरण के आधार पर लिख दिया, जिसमें गुप्त साम्राज्य, गुप्त वंश और गुप्त वंश के किसी राजा का उल्लेख तक नहीं है।

मगर आपने गोतम बुद्ध से पहले के तीन बुद्ध ककुसंध, कोणागमन और कस्सप बुद्ध का इतिहास क्यों नहीं लिखा, जबकि फाहियान इनके स्मृति - स्थलों तक खुद गया, आँखों से देखा और ये भी बताया कि ये स्मृति- स्थल कहाँ और कितनी दूरी पर हैं।

यदि सम्राट अशोक के अभिलेख और फाहियान का यात्रा - विवरण सच है तो फिर कई बुद्ध हुए यह झूठ कैसे है?

28 बुद्धों में से सप्तबुद्ध (The Seven Buddhas) की स्तुति बौद्ध साहित्य में अधिक लोकप्रिय है। दीघनिकाय के महापदानसुत में सप्तबुद्ध का विस्तृत वर्णन है। सप्तबुद्ध में विपस्सी बुद्ध, सिखी बुद्ध, वेस्सभू बुद्ध, ककुसंध बुद्ध, कोणागमन बुद्ध, कस्सप बुद्ध और गोतम बुद्ध शामिल हैं।

सप्तबुद्ध की मंडली के पाँच नाम भरहुत स्तूप पर अंकित हैं। सिखी बुद्ध का नाम स्पष्ट नहीं है, जबकि वेस्सभू के नाम की जगह " भगवतो बोधि सालो " लिखा है। बाकी पाँच बुद्धों के नाम कोई दो हजार साल से भी पहले अंकित कराए गए हैं।एक में लिखा है - भगवतो कोणागमनस्स बोधि और दूसरे में लिखा है - भगवतो विपस्सिनो बोधि।

सप्तबुद्ध का दूसरा प्रमाण हमें साँची स्तूप पर मिलता है। इसमें 3 स्तूप एवं 4 बोधिवृक्ष के माध्यम से सप्तबुद्ध को दर्शाया गया है।

सप्तबुद्ध का तीसरा सबूत हमें एलोरा की गुफा संख्या 12 में मिलता है। इसमें सप्तबुद्ध को पत्थरों पर उकेरा गया है।

सप्तबुद्ध के अनेक पुरातात्त्विक प्रमाण हैं।कैलिफोर्निया के एक म्यूज़ियम में पाकिस्तान एवं भारत से प्राप्त सप्तबुद्ध की अलग - अलग दो मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

कुल मिलाकर सप्तबुद्ध का वर्णन हमें न सिर्फ साहित्य में बल्कि हजारों साल पहले की कलाओं में भी अंकित मिलता है। ऐसा पुरातात्त्विक अंकन हमें संस्कृत साहित्य में वर्णित सप्तर्षि का नहीं मिलता है। ऐसे में माना जाना चाहिए कि संस्कृत साहित्य में सप्तर्षि की अवधारणा बौद्ध परंपरा के सप्तबुद्ध की देन है।

28 बुद्धों की परंपरा सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर गौतम बुद्ध तक फैली हुई है।

कस्सप बुद्ध, ककुच्छंद बुद्ध और कोणागमन बुद्ध के जन्मस्थान पर जाने का यात्रा - विवरण फाहियान ने अपनी पुस्तक के इक्कीसवें खंड में लिखा है।

गौतम बुद्ध से पहले भी बुद्ध हुए हैं और यदि हुए हैं तो बौद्ध सभ्यता का पिछला छोर पीछे कहाँ तक जाएगा?

अमूमन 28 बुद्ध माने जाते हैं। एक बुद्ध का कार्य - काल यदि 50 साल भी मानें तो 28 बुद्ध का 1400 साल हुए। अब गौतम बुद्ध के कार्य - काल छठी सदी ईसा पूर्व से 1400 साल पीछे की ओर जाएंगे तो वहीं पहुँचेंगे, जब भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता मौजूद थी।

सिंधु घाटी के लोग द्रविड़ थे और सिंधु घाटी की सभ्यता द्रविड़ों की बौद्ध सभ्यता थी। बौद्ध सभ्यता का विकास रातों - रात नहीं हुआ। कई नृवंशों, कई पीढ़ियों, कई गणों ने इसके विकास में अपना - अपना योगदान किया है।

गौतम बुद्ध से पहले जो 27 बुद्धों के नाम मिलते हैं, भाषाई दृष्टिकोण से वे नाम काफी दिलचस्प हैं।

एकदम से आरंभिक बुद्धों के नाम हमें द्रविड़ नामों की याद कराते हैं। शायद इसलिए कि इन बुद्धों की मौजूदगी सिंधु घाटी की द्रविड़ बौद्ध सभ्यता में रही होगी।

मिसाल के तौर पर, पहले बुद्ध का नाम तणहंकर बुद्ध है। तण द्रविड़ शब्द है, जो शीतलता का, तृप्ति का बोधक है। तणहंकर का तण न तो संस्कृत में है और न प्राकृत में है। आर्य भाषाओं में तण के अवशेष नहीं मिलते हैं। तणहंकर द्रविड़ नाम है।

तीसरे बुद्ध का नाम सरणंकर बुद्ध है। यहीं द्राविड़ों का शंकरण है। शंकरण द्राविड़ क्षेत्र के प्रचलित नामों में मिलते हैं जैसे शंकरण नायर, वी. शंकरण आदि। इसे भाषाविज्ञान में वर्ण - व्यत्यय कहते हैं जैसे वाराणसी का बनारस, लखनऊ का नखलऊ आदि।

पाँचवें बुद्ध का नाम कोण्डभ है। यह भी द्रविड़ नाम है। मगर ज्यों - ज्यों हम सिंधु घाटी सभ्यता से गौतम बुद्ध की तरफ चलते हैं, त्यों - त्यों बुद्धों के नाम प्राकृत भाषा का होते जाते हैं। मिसाल के तौर पर तिस्स, विपस्सी, वेस्सभू, कस्सप जैसे नाम प्राकृत के हैं।

28 बुद्धों के नामों से हम सिंधु घाटी सभ्यता से गौतम बुद्ध के काल तक की सभ्यताई यात्रा कर सकते हैं।

आनुवांशिकी विज्ञान ने राखीगढ़ी में मिले नर - कंकालों का परीक्षण कर बता दिया कि इनमें आर्य जीन नहीं हैं तो मामला शीशे की तरह साफ हो गया कि राखीगढ़ी के निवासी आर्य नहीं थे। राखीगढ़ी द्रविड़ों की सभ्यता थी।

राखीगढ़ी हरियाणा के हिसार जिले में है। इसकी खोज 1963 में हुई थी। यह सिंधु घाटी सभ्यता का अभिन्न अंग है, जिसकी पुष्टि वहाँ की नगर - योजना, अन्नागार, सड़कें, जलनिकासी - व्यवस्था, सील, लिखावटें आदि से हो जाती है।

ऐसे भी दुनिया में आर्य नस्ल की भाषाएँ उत्तरी भारत और श्रीलंका से लेकर ईरान और आर्मेनिया होते पूरे यूरोप में फैली हुई हैं। मगर सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेष सिर्फ भारतीय प्रायद्वीप में ही मिलते हैं, उसका फैलाव यूरोप तक नहीं है। आश्चर्य कि द्रविड़ नस्ल की भाषाएँ भी सिंधु घाटी सभ्यता की तरह सिर्फ भारतीय प्रायद्वीप में ही मिलती हैं। भारतीय प्रायद्वीप को छोड़कर दुनिया के किसी कोने से द्रविड़ नस्ल की भाषाओं के बोले जाने के सबूत नहीं मिलते हैं।

सिंधु घाटी क्षेत्र से हमें आर्य भाषाओं के बीच नदी के द्वीप की तरह एक द्रविड़ भाषा मिलती है। उसका नाम ब्राहुई है। ब्राहुई भाषा पूरबी बलूचिस्तान में बोली जाती है। इसके पूरबी किनारे पर सिंधु घाटी की सभ्यता मौजूद है।

मगर सिंधु घाटी की सभ्यता द्राविड़ों की बौद्ध सभ्यता थी। शायद इसीलिए आरंभिक बुद्धों के नाम द्रविड़ भाषा के सबूत प्रस्तुत करते हैं। मिसाल के तौर पर, पहले बुद्ध का नाम तणहंकर बुद्ध है। तण द्रविड़ शब्द है, जो शीतलता का बोधक है। आर्य भाषाओं में तण के अवशेष नहीं मिलते हैं। तीसरे बुद्ध का नाम सरणंकर है। यहीं द्राविड़ों का शंकरण है। शंकरण द्राविड़ क्षेत्र में प्रचलित नामों में मिलते हैं जैसे शंकरण नायर, वी. शंकरण आदि। इसे भाषाविज्ञान में वर्ण - व्यत्यय कहते हैं जैसे वाराणसी का बनारस, लखनऊ का नखलऊ आदि।

2.

प्राकृत में पस्स अर्थात देखना। पस्सी अर्थात देखने वाला। विपस्स अर्थात विशेष रूप से देखना। विपस्सी अर्थात विशेष रूप से देखने वाला।

अंग्रेजी में भी ऐसा है। spect अर्थात देखना। re - spect अर्थात दुबारा देखना। दुबारा हम उसी को देखते हैं, जिसके प्रति आदर हो। इसीलिए re - spect आदर का भाव देता है। spectacle, spectacles, spectator आदि सभी spect अर्थात देखने से संबंधित हैं।

एक विपस्सी बुद्ध थे। वे अंदर और बाहर की दुनिया को विशेष रूप से देखते थे। इसीलिए उनका नाम विपस्सी बुद्ध पड़ा। उन्हीं के नाम पर बौद्ध सभ्यता में विपस्सना का प्रचलन हुआ।

फाहियान जब भारत आए थे, तब विपस्सी बुद्ध को गुजरे हुए कोई 1300 साल बीत चुके थे। इसीलिए वे विपस्सी बुद्ध का स्मारक नहीं देख पाए। वे काल - कवलित हो चुके थे। फाहियान ने गोतम बुद्ध से ठीक पहले के सिर्फ तीन बुद्धों के स्मारक देखे थे, वे बुद्ध हैं - ककुसंध, कोणागमन और कस्सप।

विपस्सी बुद्ध का पुरातत्व में हमें लिखित सबूत पहली बार भरहुत स्तूप पर मिलता है, जिस पर लिखा है - भगवतो विपस्सिनो बोधि। (चित्र - 14)

विपस्सी बुद्ध का दूसरा सबूत हमें साँची स्तूप पर मिलता है। साँची स्तूप पर सप्तबुद्ध का प्रतीकात्मक अंकन है। सबसे बाएँ विपस्सी बुद्ध हैं और सबसे दाएँ गोतम बुद्ध हैं। (चित्र - 15)

विपस्सी बुद्ध का तीसरा सबूत हमें अजंता की गुफा सं. 17 में मिलता है। इसमें विपस्सी बुद्ध की तस्वीर अंकित है। विपस्सी बुद्ध के बाल ललाट पर लटके मिलते हैं। (चित्र - 16)

सप्त बुद्धों की परंपरा विपस्सी बुद्ध से आरंभ होती है और गोतम बुद्ध तक चलती है। इसलिए जहाँ - जहाँ सप्तबुद्ध का अंकन है, वहाँ - वहाँ विपस्सी बुद्ध भी मौजूद हैं।

3.

कोनागमन बुद्ध की प्रामाणिकता।

रॉबिन कनिंघम ने एक किताब लिखी है। किताब का नाम है - " दि आर्कियोलॉजी आॅफ साउथ एशिया फ्रॉम इंडस टू असोका "। इसमें सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर अशोक के समय तक का पुरातात्त्विक विश्लेषण है, जिसमें कोनागमन बुद्ध भी शामिल हैं।

पाँचवीं सदी के आरंभ में फाहियान भारत आए थे। उन्होंने अपनी पुस्तक के इक्कीसवें खंड में कोनागमन बुद्ध के स्तूप का आँखों देखा वर्णन किया है।

कोनागमन बुद्ध का स्तूप मौर्य काल से काफी पहले मौजूद था। इतना पहले कि वह अशोक के समय तक जर्जर हो चुका था। इसीलिए अशोक को उसकी मरम्मत करानी पड़ी। स्तूप निगाली गाँव के पास था। अशोक ने कोनागमन बुद्ध की स्मृति में स्तूप के पास स्तंभ लिखवाया है। स्तंभ पर " बुधस कोनाकमनस " लिखा है। (चित्र -17)

तीसरी सदी ईसा पूर्व में भरहुत का स्तूप मौजूद था। स्तूप पर कोनागमन बुद्ध का नाम लिखा है - " भगवतो कोणागमनस्स बोधि "। (चित्र -18)

हमारे पास अनेक पुरातात्त्विक और साहित्यिक सबूत हैं कि गौतम बुद्ध से पहले भी बुद्ध थे और गौतम बुद्ध से पहले भी स्तूप थे।

बौद्ध मूर्तिकला की गहन खोजबीन से पता चलता है कि सप्तबुद्ध (The Seven Buddhas) की मंडली में सबसे दाएँ गोतम बुद्ध हैं, दूसरे नंबर पर कस्सप बुद्ध हैं, तीसरे नंबर पर कोणागमन बुद्ध हैं, चौथे नंबर पर ककुसंध बुद्ध हैं, पाँचवें नंबर पर वेस्सभू बुद्ध हैं, छठे नंबर पर सिखी बुद्ध हैं और सबसे बाएँ विपस्सी बुद्ध हैं।

इस क्रम की जानकारी हमें साँची स्तूप पर अंकित सप्तबुद्ध के रेखांकन से मिलती है।

बौद्ध ग्रंथों में भी सप्तबुद्ध का विस्तृत वर्णन है। अनेक बौद्ध कलाओं में भी इसका अंकन है। भरहुत, साँची, बोधगया तथा सारनाथ की कला में सप्तबुद्धों का अंकन हुआ है।

भरहुत में सप्तबुद्धों का सात बोधिवृक्ष के रूप में सात अंकन है। प्रत्येक बोधिवृक्ष के नीचे अभिलेख है, जिसमें पूर्व बुद्ध के नाम अंकित हैं।

कोणागमन और विपस्सी बुद्ध की पुरातात्विक प्रामाणिकता की बात ऊपर हो चुकी है। अब बात ककुसंध और कस्सप बुद्ध की होगी।

भरहुत स्तूप पर ककुसंध और कस्सप बुद्ध के नाम भी अंकित हैं। अभिलेख में ककुसंध बुद्ध के लिए लिखा है - भगवतो ककुसंधस्स बोधि और कस्सप बुद्ध के लिए लिखा है - भगवतो कस्सप बोधि।

नेपाल के गोटिहवा में ककुसंध बुद्ध का स्मारक है। वहाँ सम्राट अशोक का स्तंभ है। इतिहासकारों ने कहा है कि सम्राट अशोक ककुसंध बुद्ध के स्मृति - स्थल पर आए थे और उनकी स्मृति में यह स्तंभ खड़े किए थे।

दीपवंस, महावंस और महाबोधिवंस के अनुसार ककुसंध, कोणागमन एवं कस्सप बुद्ध लंका गए थे। इन त्रिबुद्धों के बोधिवृक्ष का वहाँ प्रत्यारोपण हुआ था। अनागतवंस में गौतम बुद्ध तीन पूर्व बुद्धों ककुसंध, कोणागमन और कस्सप का उल्लेख करते हैं।

बर्मा के एक अभिलेख में त्रिबुद्धों का उल्लेख है (द ग्लास पैलेस क्रानिकल, अनुवादक मेंग तिन एवं लुईस, पृ. 6 - 7)। कहीं- कहीं खुदाई में तीन मुखों वाली बुद्ध की जो प्रतिमाएँ मिलती हैं, वे वस्तुतः गौतम बुद्ध की त्रिमुखी प्रतिमा नहीं है बल्कि वे त्रिबुद्ध की प्रतिमाएँ हैं।

त्रिबुद्ध में उन बुद्धों की गणना होती है, जिनके बोधिवृक्ष लंका में प्रत्यारोपित हुए। गौतम बुद्ध से पहले ककुसंध, कोणागमन और कस्सप बुद्ध के ही बोधिवृक्ष लंका में प्रत्यारोपित हुए थे। इसीलिए इन्हें त्रिबुद्ध का दर्जा प्राप्त है।

4.

ऐसे में हम कह सकते हैं कि बुद्ध की मुद्रा में बैठी हर मूर्ति गोतम बुद्ध की नहीं है। हर बुद्ध मुद्रा में बैठी मूर्ति को गोतम बुद्ध की मूर्ति मान लेने से बुद्धों की परंपरा नहीं समझ में आएगी।

सिंधु घाटी की सभ्यता में पीपल का बहुत महत्व था। अनेक मुहरों और मिट्टी के बर्तनों पर पीपल के वृक्षों की आकृतियाँ हैं। छोटे - मोटे देवता इसे सिर पर धारण करते हैं। पीपल वृक्ष के लिए युद्ध भी हुआ करते थे और उसकी शाखाओं को पास में रखने की होड़ भी थी। (चित्र- 19)

न सिर्फ टैब्लिट पर, न सिर्फ सील पर, न सिर्फ बर्तनों पर बल्कि हड़प्पा की मिट्टी पर भी पीपल के पत्ते की छाप मिली है।

सिंधु घाटी के सीलों में सिर्फ पीपल छाप वाली सील पर अभिलेख नीचे लिखा मिलता है, शेष सील पर ऊपर लिखा मिलता है।

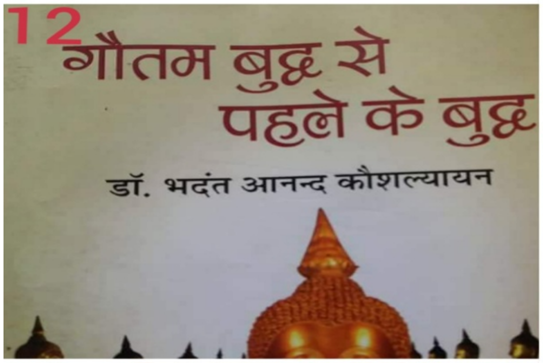
हर हाल में पीपल सिंधु घाटी सभ्यता का विशेष वृक्ष है।

पीपल का चित्रांकन न सिर्फ हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में मिलता है बल्कि चान्हुदड़ो से भी प्राप्त होता है।

बौद्ध ग्रंथों में जिन 28 बुद्धों के नाम मिलते हैं, उन बुद्धों के साथ बोधिवृक्ष का भी उल्लेख है।

चौथे बुद्ध दीपंकर थे। दीपकंर बुद्ध का बोधिवृक्ष पीपल था। संभव है कि सिंधु घाटी सभ्यता में पीपल वृक्ष की जो गरिमा है, वह दीपंकर बुद्ध के बोधिवृक्ष पीपल होने के नाते हो।

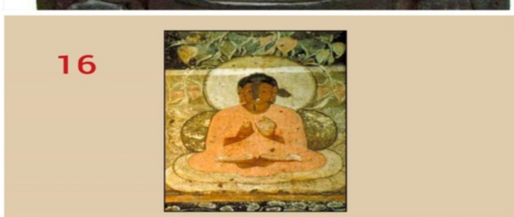
चित्रावली











Vipassi Buddha on the panel Cave 17, Ajanta







बौद्ध राजाओं की परंपरा

सिंधु घाटी सभ्यता की एक मूर्ति को " प्रीस्ट किंग " कहा गया है। उजले रंग की कम पकी हुई और सेलखड़ी की बनी हुई मूर्ति है। मूर्ति की ऊँचाई 17.5 सेंमी तथा चौड़ाई 11 सेंमी है। फिलहाल मुअनजोदड़ो से प्राप्त यह मूर्ति नेशनल म्यूजियम कराँची में है। (चित्र - 20)

प्रीस्ट किंग की मूर्ति के शरीर पर बौद्ध शैली का वस्त्र है, जिसमें वस्त्र को बाएँ कंधे पर रखा गया है और दायाँ कंधा मुक्त है। गोतम बुद्ध भी इसी शैली में वस्त्र धारण करते थे।

प्रीस्ट किंग की मूर्ति की आँखें आधी खुली हुई हैं और उसकी नजर नाक के अगले हिस्से पर टिकी हुई है। बुद्ध की भी अमूमन मूर्तियाँ अधखुली आँखों वाली हैं और नजर नाक के अगले हिस्से पर टिकी हुई है।

अधखुली आँखें अनासक्त अवस्था को दर्शाती है और इसी अवस्था को दिखाने के लिए बुद्ध की आँखें अधखुली दिखाई जाती है।

प्रीस्ट किंग की मूर्ति की कमर का निचला हिस्सा नहीं है। इस कारण हमें यह पता नहीं है कि वह किस मुद्रा में बैठी हुई है।

मगर मुअनजोदड़ो की एल एरिया से गोतम बुद्ध जैसा वस्त्र पहने और उन्हीं की मुद्रा में बैठी हुई एक दूसरी मूर्ति मिली है। मूर्ति की कमर में चुन्नट वाला गोतम बुद्ध जैसा वस्त्र है।

चुन्नट वाली यह मूर्ति धूसर सेलखड़ी की बनी है और फिलहाल इस्लामाबाद म्यूजियम में है। मूर्ति का दायाँ हाथ भूमि स्पर्श मुद्रा में है। (चित्र-21)

मगर चुन्नट वाली इस मूर्ति का सिर नहीं है। संयोग से पीठ के ऊपरी हिस्से का केश - विन्यास बच गया है। चुन्नट वाली इस मूर्ति का केश - विन्यास ठीक प्रीस्ट किंग जैसा है। दोनों मूर्तियाँ वैशिष्ट्य में एक जैसी हैं।

अब हम प्रीस्ट किंग के निचले वस्त्र तथा बैठने की मुद्रा की परिकल्पना कर सकते हैं। प्रीस्ट किंग भी कमर में चुन्नट वाला वस्त्र पहना होगा और उसके बैठने की मुद्रा भूमि स्पर्श मुद्रा होगी।

किंग प्रीस्ट की कमर के नीचे का वस्त्र, कमर के ऊपर का वस्त्र, बैठने की मुद्रा, अधखुली आँखें, नाक के अगले हिस्से पर नजर - सब कुछ बौद्ध संस्कृति से मेल खाता है।

प्रीस्ट किंग का अनुवाद पुरोहित राजा किया गया है। लेकिन बौद्ध शैली का पुरोहित होने के कारण पुरोहित अनुवाद एकदम सटीक नहीं है। इसे प्रीस्ट किंग से अधिक बुद्धिस्ट मंक किंग कहना सही होगा।

सिर पर पीपल, सील पर पीपल, बर्तन पर पीपल - सिंधु घाटी की सभ्यता में पीपल छाया हुआ था। पीपल की पूजा, पीपल की रक्षा, पीपल लेने की होड़ - सिंधु घाटी सभ्यता में पीपल की पवित्रता को दर्शाता है। (चित्र- 22)

28 बुद्धों में से चौथे दीपंकर बुद्ध थे। दीपंकर बुद्ध का बोधिवृक्ष पीपल है। ये जो प्रीस्ट किंग की मूर्ति है, वह लगभग 1900 - 2000 ईसा पूर्व की है। दीपंकर बुद्ध का समय भी लगभग वहीं है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध हुए। दीपंकर बुद्ध उनसे 24 पीढ़ी पहले हुए।

ऐसा अनुमान किया गया है कि सिंधु घाटी सभ्यता की प्रशासन - व्यवस्था धर्म गुरूओं और पुरोहितों के हाथों में केंद्रित थी तो वह बुद्धिस्ट गुरूओं और बुद्धिस्ट भिक्खुओं के हाथों में केंद्रित थी। शासन धर्म प्रधान था, न राज सिंहासन, न राज महल। जनता पर शासन करने वाली हुकूमत जो भी रही हो, वह बलप्रयोग में विश्वास नहीं करती थी। जीवन शांतिपूर्ण था।

सिंधु घाटी सभ्यता में तलवारें बिल्कुल नहीं मिलतीं। शिरस्त्राण और कवच जैसी रक्षात्मक चीजें सिरे से गायब हैं। बड़े पैमाने पर फौज और लस्कर का पता नहीं चलता। जेल जैसी कोई संरचना नहीं मिलती। जो चाकू और कुल्हाड़े मिले हैं, वे हथियार नहीं बल्कि औजार हैं। यहीं तो बौद्ध सभ्यता है।

2.

भारत का सांस्कृतिक इतिहास अति प्राचीन है, लेकिन राजनीतिक इतिहास का आरंभ लगभग 7 वीं सदी के मध्य (650 ई. पू.) से होता है। फिर हमें राज सिंहासन, राज महल, ताज, तलवारें, फौज, कारागार आदि दिखाई देने लगते हैं। इसके पूर्व धम्म शासन की प्रधानता थी, जैसा कि हम सिंधु घाटी सभ्यता में देखते हैं।

धम्म शासन में धम्म तत्व ही प्रमुख था। अस्त्र - शस्त्र अधिक मायने नहीं रखते थे। गोतम बुद्ध के लगभग सौ साल पहले से भारत का राजनीतिक इतिहास आरंभ होता है।

गौतम बुद्ध के समय में संपूर्ण भारत अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। राज्य दो प्रकार के थे - राजतंत्र और गणतंत्र। जहाँ एक ओर अंग, मगध, काशी, कोशल, अवंति आदि राजतंत्र थे, वही दूसरी ओर वज्जि तथा मल्ल गणतंत्र थे।

छठीं सदी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध तक आते - आते 4 शक्तिशाली राज्यों का प्रभुत्व दिखाई देता है, वे राज्य हैं - कोशल, वत्स,अवंति और मगध। आश्चर्य कि बुद्ध कालीन ये चारों राज्य के शासक गौतम बुद्ध से प्रभावित और प्रेरित थे। बुद्ध के व्यक्तित्व में जादू था।

बुद्ध के समय में कोशल के राजा प्रसेनजित थे। प्रसेनजित के समय में कोशल का राज्य उत्कर्ष पर था। वे गौतम बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखते थे। बुद्ध भी उनकी राजधानी श्रावस्ती में जाते तथा विश्राम करते थे। सर्वाधिक शिक्षाएँ भी बुद्ध ने यहीं दी थी।

श्रावस्ती में अनाथपिंडिक ने जो विहार बनवाए थे, गौतम बुद्ध के सर्वाधिक दिन यहीं बीते।

अनाथपिंडिक का ऐतिहासिक शिल्पांकन भरहुत के स्तूप पर मिलता है। (चित्र-23)

अनाथपिंडिक श्रावस्ती के प्रसिद्ध व्यापारी तथा पूँजीपति थे। बचपन का नाम सुदत्त था। राजगीर में ससुराल थी। यहीं वे गौतम बुद्ध से प्रभावित हुए थे। प्रभावित भी ऐसे हुए कि तथागत को ठहरने के लिए श्रावस्ती में उन्होंने राजकुमार जेत से जेतवन की जमीन पर करोड़ों स्वर्ण मुद्राएँ बिछाकर उसे खरीद लिए और भव्य महाविहार बनवाए।

फाहियान ने जेतवन महाविहार का वर्णन करते हुए लिखा है कि जेतवन विहार सात तले का था। विहार के पूरबी दरवाजे पर पत्थर के बने दो धम्म स्तंभ खड़े हैं। एक पर धम्म चक्र और दूसरे पर बैल की आकृति बनी हुई है। विहार के दाएँ - बाएँ निर्मल जल से भरे सरोवर हैं और सदाबहार पेड़ों के वन हैं, जिनमें रंग - बिरंगे फूल खिले हैं।

ह्वेनसांग ने जेतवन विहार के पूरबी दरवाजे पर खड़े दोनों प्रस्तर - स्तंभों की ऊँचाई 70 फीट बताई है और लिखा है कि ये दोनों प्रस्तर - स्तंभ सम्राट अशोक ने बनवाए हैं। श्रावस्ती का नाम ह्वेनसांग ने शलोफुशीटी और फाहियान ने शी - वेई लिखा है।

साहित्यिक साक्ष्य बताते हैं कि गौतम बुद्ध ने अपने जीवन के सर्वाधिक वर्षावास कुल मिलाकर 19 वर्षावास यहीं बिताए थे। सबसे अधिक यहीं बोले भी थे। जेतवन विहार इसीलिए बौद्धों के लिए खास है।

जेतवन विहार कब बना होगा? साहित्यिक प्रमाण से पता चलता है कि तथागत ने जेतवन विहार में प्रथम वर्षावास बोधि के 14 वें वर्ष में किए थे। यदि बुद्ध का जन्म - वर्ष 563 ई. पू. में मान लिया जाए तो उन्हें 35 वर्ष की उम्र में बोधि की प्राप्ति हुई थी तो बोधि - वर्ष 528 ई. पू. होगा। फिर यदि वे 14 वें वर्ष में जेतवन विहार में प्रथम वर्षावास किए, तब जेतवन विहार का निर्माण- काल 514 - 513 ई. पू. होगा।

अनाथपिंडिक द्वारा जेतवन की खरीद का शिल्पांकन भरहुत स्तूप पर उत्कीर्ण है। शिल्पांकन के ठीक नीचे धम्म लिपि में लिखा है - " जेतवन अनाथपेडिको देति कोटि संथतेन केता"। मतलब कि खरीददार अनाथपिंडिक करोड़ों (स्वर्ण - मुद्राएँ) बिछाकर जेतवन अर्पित करते हैं।

शिल्पांकित पटल पर हाथों में जल - पात्र लिए अनाथपिंडिक जेतवन को अर्पित करने के लिए खड़े हैं।। बैलगाड़ी पर लादकर स्वर्ण - मुद्राएँ जेतवन की जमीन पर बिछाने के लिए आई हैं। बैलों की नाक में नाथने की रस्सी लगी है। कंधों से जुए को हटा लिया गया है। बैलों से जोती हुई गाड़ी खुल चुकी है।

बैलगाड़ी के पीछे से एक आदमी स्वर्ण - मुद्राएँ उतार रहा है। जो स्वर्ण - मुद्राएँ गाड़ी से पहले उतार ली गई हैं, उन्हें दो आदमी जेतवन की जमीन पर बिछा रहे हैं। शर्त थी कि जेतवन की जमीन उसे बिकेगी, जो इसे स्वर्ण - मुद्राओं से ढक देगा और अनाथपिंडिक ने बुद्ध के लिए यह चुनौती स्वीकार कर ली थी।

2200 सौ साल पहले का जो बैलगाड़ी का उत्कीर्णन है, वह अभी हाल तक की बनी बैलगाड़ी की बनावट से मेल खाती है। आश्चर्य इस बात की है कि इतने बड़े पूँजीपति के आवास के निकट ही अंगुलिमाल का भी आवास था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि सुदत्त के मकान के निकट अंगुलिमाल का वह स्थान था, जहाँ वे बौद्ध हुए थे। खुदाई में भी सुदत्त और अंगुलिमाल के स्थलों के बीच की दूरी कोई 50 मीटर ही है।

कोसलराज पसेनदि (प्रसेनजित) के जीवन पर शांतिस्वरूप बौद्ध ने किताब लिखी है। जिस कोसलराज को संस्कृत में प्रसेनजित कहा जाता है, उन्हें पालि में पसेनदि कहा जाता

है। मगर पुरातत्व कोसलराज का असली नाम सिर्फ " पसेन " बताता है।

भरहुत स्तूप पर दो जगह राजा प्रसेनजित का नाम लिखा है, एक जगह लिखा है - " राज पसेन कोसलो " अर्थात कोसलराज पसेन। दूसरी जगह लिखा है - " थेर पसेनग राज भगोवेतो च दाने " अर्थात भिक्षु पसेन श्रेष्ठतम राजा भगवतो का दान। (चित्र-24)

दोनों पुरालेखों से कोसलराज प्रसेनजित (तथाकथित) की जो वास्तविकता सामने आती है, वह यह कि राजा प्रसेनजित का असली नाम पसेन था। वे कोसल राज्य के राजा थे। उन्हें बौद्ध धम्म में गहरी आस्था थी। ऐसी कि वे भिक्षुवत जीवन बिताते थे।

वत्स की राजधानी कौशांबी थी। बुद्ध के समय में उदयन वहाँ के राजा थे। उदयन भी बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखते थे, ऐसे कि उन्होंने अपने पुत्र का नाम बोधिकुमार रख लिए थे।

बौद्ध भिक्षु पिंडोल ने उदयन को धम्म में दीक्षित किए थे। तब कौशांबी में कई बौद्ध मठ थे। घोषिताराम सर्वप्रमुख था। बुद्ध कौशांबी आते तथा विश्राम करते थे।

उदयन की ऐतिहासिकता पुरातत्व प्रमाणित है। कौशांबी की खुदाइयों में उदयन के राजप्रासाद के अवशेष मिले हैं। (चित्र- 25)

अवंति के राजा प्रद्योत भी धम्म में दीक्षित हुए। बौद्ध महाकच्चायन के प्रभाव में वे बौद्ध हो गए थे।

तब मगध में बिंबिसार (544 - 492 ई. पू.) का शासन था। वंश हर्यंक था। हर्यंक लोग नागवंशी थे। विनयपिटक से ज्ञात होता है कि बुद्ध से मिलने के बाद बिंबिसार धम्म का मार्ग अपना लिए थे।

बिंबिसार के बाद मगध की गद्दी पर अजातशत्रु (492- 460 ई. पू.) बैठे। भरहुत की एक वेदिका पर " अजातशत्रु भगवतो वंदते " उत्कीर्ण मिलता है। यह उनके बौद्ध होने का प्रमाण है। अजातशत्रु ने ही सप्तपर्णि गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति कराई थी।

हर्यंक वंश के बाद मगध पर शिशुनाग वंश काबिज हुआ। ये लोग भी नागवंशी थे। इसी वंश के राजा कालाशोक ने वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति कराई थी।

सोहगौरा ताम्रपत्र पूर्व मौर्य कालीन या मौर्य कालीन है - यह विवादास्पद है। मगर यह विवादास्पद नहीं है कि यह आदेश किसी बौद्ध राजा का है।

ताम्रपत्र पर अंकित बौद्ध प्रतीक (बोधिवृक्ष आदि) डंके की चोट पर साबित करते हैं कि जनकल्याण का यह आदेश किसी बौद्ध राजा का है।

अभिलेख श्रावस्ती के किसी महामात्र के प्रशासनिक काल में लिखा गया है। महामात्र का नाम पता नहीं चल सका है।

इस ताम्रपत्र पर आपत काल के लिए दो अन्नागार बनाए जाने का आदेश लिखा है।

बौद्ध राजा जनता के सरोकारों को लेकर इतने सजग थे कि दुर्भिक्ष में जनता भोजन के बिना न मरे, इसके लिए वे पुख्ता इंतजाम करते थे।

अन्नागारों की राजकीय व्यवस्था सिंधु घाटी सभ्यता में थी, जिसकी निरंतरता बौद्ध राजों ने बनाए रखी।

इसीलिए अनाज के दो कोष्ठागार बनाने का आदेश इस ताम्रपत्र पर लिखित है। (चित्र- 26)

इससे बौद्ध भारत में जनकल्याणकारी राज्य की स्थापना का पता चलता है, जिससे कि महामारी, अकाल आदि में बगैर खाए कोई मरे नहीं।

अगर खाए बिना कोई मर गया तो फिर जनकल्याणकारी राज्य का क्या मतलब?

3.

जब मगध पर मौर्यों का शासन स्थापित हुआ, तब धम्म अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। सम्राट अशोक गंगा घाटी के धम्म को उठाकर विश्व धर्म का रूप दे डाले।

जिन लोगों को अशोक के धम्म के बारे में कोई संशय है, उन्हें अशोक का भाब्रू लघु शिलालेख पढ़ना चाहिए, जिसमें साफ लिखा है - बुधसि धंमसि संघसि। (चित्र - 27)

सम्राट अशोक की आस्था बुध, धम्म और संघ में थी।

मार्क्स के सिद्धान्तों को प्रशासन के क्षेत्र में लेनिन ने लागू किया और बुद्ध के सिद्धान्तों को प्रशासन के क्षेत्र में सम्राट अशोक ने लागू किया और यह बौद्ध प्रभाव था कि प्रशासन के क्षेत्र में न केवल मानवाधिकार संरक्षण को बल्कि जीवाधिकार संरक्षण को भी स्थापित करने का श्रेय सम्राट अशोक को है।

जयचंद्र विद्यालंकार ने मौर्य प्रशासन लिखने पर आपत्ति की है और अपने इतिहास - ग्रंथ में मौर्य प्रशासन की जगह मौर्य अनुशासन का इस्तेमाल किया है। यह प्रशासन के क्षेत्र में धम्म की गरिमा है। प्रशासन में प्रकृष्टता का भाव है, जबकि अनुसासन में धम्म की करुणा और प्रेम की मिठास है।

जयचंद्र विद्यालंकार ने यह बात इसलिए कही है कि अशोक के शिलालेखों में अनुसासन शब्द है। प्रशासन का इस्तेमाल गुप्त राजाओं के शिलालेखों में है। सम्राट अशोक ने जिन माध्यमों से अपनी जनता से नजदीकियाँ बनाई, वह दमनकारी नहीं बल्कि धम्म अनुसासन था।

सम्राट अशोक भारत के ऐसे सम्राट थे, जिन्होंने राजपद और शासन के आदर्श सबसे पहले लिखित रूप में जारी किए। एक ऐसा राजनीतिक दर्शन जिसे छूने के लिए अनेक राजा ललचते रहे और छू नहीं पाए।

गौतम बुद्ध का जमाना था। तब स्वतंत्र पशु - चिकित्सालय नहीं था।

तत्समय के मशहूर चिकित्सक जीवक थे। राजगीर में उनका चिकित्सालय था।

भरहुत स्तूप पर जीवक का अस्पताल उकेरा गया है। चिकित्सालय में औषधियाँ सिकहर (छींका) पर टँगी हुई हैं। जीवक पेट का इलाज कर रहे हैं। संबंधित औषधियाँ सिलबट्टे से पीसी जा रही हैं।

चिकित्सालय में बीमार पशु भी हैं। कराहते बीमार पशुओं का अंकन बड़ा मार्मिक है। (चित्र - 28)

फिर सम्राट अशोक का जमाना आया। सम्राट अशोक ने पशु चिकित्सालय को मनुष्यों के चिकित्सालय से अलग किए।

दूसरे शिलालेख में लिखवाए कि मनुष्य चिकित्सा और पशु चिकित्सा मैंने दो चिकित्साओं को अलग-अलग स्थापित किए -- मनुस चिकीछा च पसु चिकीछा।

भारत के इतिहास में स्वतंत्र पशु चिकित्सालय खोलने का श्रेय सम्राट अशोक को है। यह धम्म की मर्यादा थी।

अशोक के बाद मीनाण्डर का उल्लेख प्रासंगिक होगा। सबसे प्रसिद्ध यवन शासक मीनाण्डर (160 - 120 ई.पू.) थे। बौद्ध साहित्य में वे मिलिन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजधानी सांकल में थी। बड़ी रूतबे वाली थी। ऊँची प्राचीरों से घिरी हुई थी।

मीनाण्डर विदेशी थे। मगर वे बौद्ध धर्मावलंबी हो गए थे। मीनाण्डर की कुछ मुद्राओं पर धम्म चक्र उत्कीर्ण है। उनकी मुद्राएँ काबुल से लेकर गाजीपुर तक और मथुरा से लेकर बुंदेलखंड तक मिली हैं। स्वात घाटी के बुतकारा स्तूप के निर्माता अशोक थे तो उसके दूसरे लेयर के निर्माता मीनाण्डर थे।

मीनाण्डर न्यायप्रिय शासक थे। प्लूटार्क ने लिखा है कि यात्रा - काल में जब एक शिविर में मीनाण्डर की मृत्यु हुई, तब उनके भस्म के वितरण को लेकर जनता में झगड़े उठ खड़े हुए। कारण कि वे इतना जनप्रिय थे कि लोग उनकै भस्म पर अलग - अलग स्तूप बनाना चाहते थे।

भारत के इतिहास में बुद्ध के बाद मीनाण्डर, मीनाण्डर के बाद कबीर और कबीर के बाद नानक का नाम आता है, जिनके मृत शरीर को भी अपनाने के लिए जनता व्याकुल थी।

मीनाण्डर ने भारतीय इतिहास में एक दार्शनिक के रूप में अपनी प्रसिद्धि प्राप्त की। मिलिंद पण्हो में मीनाण्डर की अत्यंत प्रशंसा है। मीनाण्डर इंडो - यूनानी इतिहास में सर्वाधिक लोकप्रिय नृपति हैं।

राजा पोरस ने राजा सिकंदर से कहा था कि मेरे साथ वो व्यवहार करो, जो एक राजा दूसरे राजा से करता है।

किंतु भिक्खु नागसेन ने राजा मीनाण्डर से कहा था कि राजा की तरह शास्त्रार्थ करोगे तो नहीं करेंगे, विद्वान की तरह करोगे, तब करेंगे।

वो बौद्ध दर्शन की ताकत थी कि मीनाण्डर ने नागसेन से राजा की भाँति नहीं बल्कि दार्शनिक की तमीज से बात की थी।

4 .

मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले में पवाया है। इसे प्राचीन समय में पद्मावती कहा जाता था। विदिशा के नागवंशियों ने 31 ई. पू. में इसे अपनी राजधानी बनाई थी।

नागों के इस राजधानी का वर्णन खजुराहो के शिलालेख में है। राजधानी की रचना अभूतपूर्व थी। बड़े-बड़े और ऊँचे भवनों की पंक्तियाँ थीं। राजमार्गों पर बड़े- बड़े घोड़े दौड़ते थे। दीवारें चमकदार, स्वच्छ और गगनचुंबी थीं, ऐसी कि आकाश से बातें करती थीं और बड़े- बड़े भवन तुषारमंडित पर्वत की चोटियों के समान जान पड़ते थे।

इन्हीं नाग राजाओं के पूर्वज शेषनाग (110 ई. पू. - 90 ई. पू.) थे, जिनकी राजधानी विदिशा थी। शेषनाग के प्रभाव और शक्ति का अंदाजा इस मिथक से लगाया जा सकता है कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है।

पद्मावती के नाग राजाओं ने धम्म चक्र प्रकार के सिक्के जारी किए थे। यही प्रमाण है कि वे बौद्ध थे।

नागों का योगदान न सिर्फ बौद्ध सभ्यता के लिए बहुमूल्य है बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी इनका काफी योगदान है।

भारत में पान (तांबूल) की खेती आस्ट्रिकों ने आरंभ की। सुपारी, चूना और खैर लगाकर बीटक (बीड़ा) बनाने की कला इन्हें मालूम थी। इसीलिए तांबे के रंग के आधार पर इसका नाम तांबूल किया।

अरब और ईरान के लोग जब तांबूल से वाकिफ हुए तो वे इसे अपने देश ले गए। यहीं कारण है कि तांबूल को अरबी में " तंबुल " और फारसी में " तंबोल " कहा जाता है।

द्रविड़ों ने इसे " वेट्टिलै " (बीटक) कहा। तमिल और मलयालम में यहीं नाम प्रचलित है।

दक्षिण से " वेट्टिलै " को पुर्तगाली यूरोप ले गए। पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, स्पैनिश, अंग्रेजी अनेक यूरोपीय भाषाओं में " वेट्टिलै " का " बेटल " (Betel) नाम प्रचलित है।

भारत में पान को लोकप्रिय बनाने का श्रेय नागों को है। इसीलिए पान को नाग लता या नाग वल्लरी भी कहते हैं।

मराठी में इसे नाग बेल तो गुजराती में इसे नागर बेल कहा जाता है। नागर बेल में " र " संबंध कारक है। आप यहाँ नागरी लिपि को याद कर सकते हैं।

नागरी लिपि नागों की देन है।

उदाहरण, जैसे तुम्हारी गाड़ी मतलब आप की गाड़ी, वैसे नागरी लिपि मतलब नाग की लिपि।

तुम्हारी और नागरी दोनों में " री " संबंध कारक है।

संबंध कारक अधिकार का भी बोधक होता है। नागरी लिपि पर नागों का अधिकार था।

मतलब नाग लोग नागरी लिपि के लेखन में सिद्धहस्त थे और इन्हीं लोगों ने ही इस प्रकार की लेखन - कला को पहली बार प्रयोग में भी लाया।

महाराष्ट्र के भंडारा जिले में पवनी नामक नगर है। यह वैनगंगा के तट पर नागों का नगर है। नगर के दक्षिण में एक 20 फीट ऊँचा मिट्टी का टीला था। 1969 - 70 में इसकी खुदाई हुई। खुदाई में महास्तूप मिला।

यह महास्तूप अशोक से पहले का है। इसलिए कि खुदाई में बुद्धकालीन आहत मुद्राएँ भी मिलीं। समय के साथ - साथ स्तूप का विस्तार होते गया।

अनेक नाग दानदाताओं ने स्तूप के निर्माण में योगदान किया। इनमें एक थे - नाग पचनिकाय। ये पाँचों निकाय के ज्ञाता थे। एक वेदिका स्तंभ पर इनका नाम लिखा है। पंच निकाय का मतलब है - दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। इससे यह भी साबित होता है कि बौद्ध निकायों की रचना काफी पहले हो चुकी थी।

स्तूप के शिलालेखों पर अनेक बौद्ध नाग दानदाताओं के नाम अंकित हैं। अनेक नाम के अंत में " नाक " है जैसे नदनाक, बालनाक आदि।

महाराष्ट्र की अनेक बौद्ध चैत्य - गुफाओं को नाग दानदाताओं ने आर्थिक मदद की, निर्माण में सहयोग किए तथा अपने नाम शिलालेखों पर अंकित कराए। ये अपने नाम के अंत में " नाक " लिखते थे। उदाहरण देखिए।

1. भाजे : अनपि नाक, वासुल नाक आदि।

2. पवनी : नद नाक, बाल नाक आदि।

3. कान्हेरी : अपरे नाक, नाकनाक, गोल नाक के पुत्र, खान्द नाग की माता आदि।

4. कार्ले : मितादेव नाक, अगनीमित्तरा नाक के पुत्र, महादेव नाक की माता आदि।

5. जुन्नार : थाभुति नाक आदि।

6. शिवनेरी : विरसे नाक आदि।

7. नासिक : एरोहल्या चालिसाल नाक की पुत्री, छाकलेपाकिया राम नाक आदि।

8. वेडसा : अपदेव नाक की पत्नी, पुस्प नाक के पुत्र आदि।

प्राचीन काल के सभी बौद्ध नागों को आभार, जिन्होंने धम्म के विकास में सहयोग किए और जिनकी अमर गाथाएँ आज भी शिलालेखों पर अंकित हैं।

5.

कनिष्क ने भारत को जीता, मगर भारत की संस्कृति ने कनिष्क को जीता और वे बौद्ध हो गए।

भारतीय इतिहास में कनिष्क की ख्याति रण - विजय के कारण नहीं बल्कि धम्मानुगामी होने के कारण है।

श्रीधर्मपिटकनिदानसूत्र के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर जीत लिया, मगर वह सोना - चाँदी नहीं बल्कि बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष और बुद्ध का भिक्षा - पात्र पाकर ही संतुष्ट हो गया।

कनिष्क ने न सिर्फ भारत में बल्कि मध्य एशिया में भी अनेक विहार, स्तूप एवं मूर्तियों का निर्माण कराया। मथुरा तो कनिष्क कालीन बौद्ध अवशेषों से पटा हुआ है। उसी मथुरा में कनिष्क के अवशेष जमीन के नीचे मिले हैं और कृष्ण के अवशेष जमीन के ऊपर मिले हैं।

मथुरा और ब्रजमंडल को बुद्ध के साथ कभी ठीक से जोड़ा नहीं गया..... ब्रजमंडल में जितनी बुद्ध की प्रतिमाएँ मिली हैं.... अन्य किसी की नहीं मिली हैं।

लगभग पाँच हजार बुद्ध की प्रतिमाएँ ब्रजमंडल से मिल चुकी हैं....हजारों प्रतिमाएँ अभी जमीन के नीचे हैं।

इतने बुद्धिस्ट पुरावशेषों को देखने से ऐसा लगता है कि कभी ब्रजमंडल के कण - कण में बुद्ध थे।

बुद्ध का पर्याय ब्रजमंडल है और बुद्ध ब्रजमंडल के पर्याय हैं।

पाँच हजार प्रतिमाएँ तो पूरे भारत से भी किसी लोकनायक की नहीं मिलीं ...इतनी तो अकेले बुद्ध की सिर्फ ब्रजमंडल से मिल गईं।

इससे भारत में बुद्ध की लोकप्रियता का अंदाज हम कर सकते हैं।

कनिष्क काल में ही बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति हुई। बौद्ध त्रिपिटकों के प्रामाणिक पाठ तैयार हुए।

अफगानिस्तान के राबाटक नामक जगह से 1993 में बॅक्ट्रियन भाषा और यूनानी लिपि में लिखा कनिष्क का 23 पंक्तियों का शिलालेख मिला है। (चित्र - 29)

शिलालेख में कनिष्क के पड़ दादा, दादा और पिता का नाम लिखा है। खुद कनिष्क का भी नाम लिखा है।

इसमें भारत के जिन छः प्रमुख नगरों का नाम लिखा है, उनमें एक साकेत भी है।

कनिष्क के जमाने में साकेत बड़े रुतबे का शहर था। शिलालेख में साकेत का नाम " जागेदा " (Zageda) लिखा है।

बॅक्ट्रियन भाषा में S बदलकर Z हो जाता है।

कनिष्क के शिलालेख में जो Zageda है, वही टोलेमि के भूगोल में Sageda है और जो टोलेमि के भूगोल में सागेदा है, वहीं पालि साहित्य में साकेत है।

कनिष्क तो शक था ही नहीं, इसलिए वह शक संवत क्यों चलाएगा? कनिष्क तो कुषाण था।कनिष्क दरअसल शाक्य मुनि का अनुयायी था, इसीलिए संभावना है कि वह शाक्य संवत चलाया होगा।

कनिष्क का प्रभाव इतना था कि ऋग्वेद तक प्रभावित हुआ। एच. ब्रूनहाफ़र के आधार पर इतिहासकार जी. ह्यू सिंग ने बताया है कि ऋग्वेद में उल्लिखित राजा कनित पृथुश्रवस वास्तव में राजा कनिष्क ही हैं।

नागों की राजधानी पद्मावती के दक्षिण - पूरब में मघों का राज्य था। पुराणों में इन्हें मेघ वंश कहा गया है।

पहले इस वंश का शासन बघेलखंड में था, फिर कौशांबी तक विस्तृत हुआ और चरमोत्कर्ष के दौर में इस वंश ने फतेहपुर तक फतह कर लिया था।

इस वंश ने ईसा की दूसरी और तीसरी सदी में अपना दबदबा बनाए रखा।

मघ वंश के सिक्के तथा अभिलेख हमें बंधोगढ़ और कौशांबी से लेकर फतेहपुर तक मिलते हैं।

मघ वंश की प्रारंभिक राजधानी बंधोगढ़ में थी, भद्रमघ ने कौशांबी तक और वैश्रमण मघ ने फतेहपुर तक मघ साम्राज्य का विस्तार किए थे।

मघ वंश के राजाओं ने बौद्ध धम्म का पताका फहराए और अपने सिक्कों पर बौद्ध प्रतीकों की छाप अंकित कराए।

भद्रमघ का है तथा नव मघ के सिक्कों पर इन राजाओं के नाम लिखे हुए हैं। (चित्र - 30)

सिक्कों की लिपि उत्तर कुषाण ब्राह्मी लिपि है तथा भाषा पिजिन संस्कृत है, जिसमें प्राकृत भाषा के ऊपर संस्कृत के वर्ण संकोच का लेयर चढ़ा है।

6.

बौद्ध धर्म के संरक्षक के रूप में हर्ष की तुलना विद्वानों ने सम्राट अशोक और कनिष्क से की है।चीनी यात्री ह्वेनसांग हर्ष के काल में ही भारत आए थे। ह्वेनसांग ने साफ लिखा है कि

हर्ष बौद्ध धम्म का अनुयायी थे।

विश्व इतिहास की झलक में जवाहर लाल नेहरू ने प्राचीन भारत के इतिहास से स्वतंत्र शीर्षक लिखने के लिए सिर्फ तीन राजाओं को चुना है -- 1. चंद्रगुप्त मौर्य 2. सम्राट अशोक और 3. हर्षवर्धन।

और जो चुना वो सभी गैर वैदिक थे।

आश्चर्य कि उनमें से दो मौर्य वंश के थे और उससे आश्चर्य कि तीनों बौद्ध राजा थे।

प्रयाग में दो नदियों के संगम पर, आज जहाँ कुंभ मेला का आयोजन होता है, वह सातवीं सदी में बौद्धों की महादान भूमि हुआ करती थी।

प्रयाग में बौद्धों की महादान भूमि का वर्णन ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृत्तान्त में किया है। तब प्रयाग का संगम दस ली के घेरे में विस्तृत था। दूर दूर तक बालू फैला हुआ था। भूमि ऊँची और सुहावनी थी।

प्रयाग की इस महादान भूमि पर दान किए जाने का शुभारंभ बुद्धदेव की मूर्ति के अलंकरण से होता था। हर्षवर्धन ने अनेक श्रमणों को यहाँ दान दिए थे।

इसी प्रयाग के रेतीले तट से ह्वेनसांग ने भारत के प्रतापी बौद्ध राजा हर्षवर्धन से विदा ली थी।

पंजाब को छोड़कर उत्तरी भारत के बड़े हिस्से पर शासन करने वाले हर्षवर्धन भारत के अंतिम बड़े हिंदू सम्राट नहीं बल्कि अंतिम बड़े बौद्ध सम्राट थे।

हर्षवर्धन के बाद पाल नरेशों ने बौद्ध धम्म की पताका पूर्वी भारत में फहराए रखी। धर्मपाल (770 -810 ई.) एक उत्साही बौद्ध थे। उन्होंने विक्रमशिला तथा सोमपुरी में प्रसिद्ध बौद्ध विहारों की स्थापना की। प्रसिद्ध बौद्ध लेखक हरिभद्र उनकी राजसभा में रहते थे।

राजा धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल (810 - 850) हुए। पिता की भाँति देवपाल भी बौद्ध मतानुयायी थे। 40 बरसों का शासन था। ओदंतपुरी का प्रसिद्ध बौद्ध मठ निर्माण कराने का श्रेय इन्हीं को है।

जावा के शैलेन्द्रवंशी शासक बालदेवपुत्र के अनुरोध पर देवपाल ने उन्हें नालंदा में एक बौद्ध विहार बनवाने के लिए 5 गाँव दान में दिए थे। बौद्ध विहारों के निर्माण में राजा देवपाल का योगदान अप्रतिम है। नालंदा और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से उनके समय के अनेक लेख प्राप्त होते हैं, जिससे साबित होता है कि देवपाल नैष्ठिक बौद्ध थे।

अनेक बौद्ध राजाओं का ब्राह्मणीकरण भी हुआ है, उनमें से एक नाम जयचंद्र का है। जयचंद्र गहड़वाल वंश के अंतिम शक्तिशाली शासक थे।

"महाराजा जयचंद्र गद्दार नहीं, परम देशभक्त बौद्ध राजा थे" नामक पुस्तक पढ़ी। इसके लेखक शांति स्वरूप बौद्ध हैं। छापा है सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली ने।

पुस्तक में दर्जनों इतिहासकार और अभिलेखों के साक्ष्य से बताया गया है कि संयोगिता - हरण की बात झूठी है और चंद्रबरदाई का भट्ट - भणंत है। जयचंद्र की संयोगिता नाम की कोई पुत्री नहीं थी।

जयचंद्र एक बौद्ध राजा थे। बौद्ध होने की वजह से ही उन्हें गद्दार कहा गया है। महाराजा जयचंद्र के दीक्षा - गुरू भिक्खु जगन्मित्रानंद थे। उनकी दादी महारानी कुमारदेवी और बसंत देवी महायान बौद्ध धर्म की समर्पित अनुगामिनी थी। खुद गोविंदचंद्र ने श्रावस्ती, सारनाथ, कन्नौज, नालंदा, कुशीनगर और बोध गया के विहारों को पर्याप्त धन, ग्राम आदि उपहार स्वरूप दान में दिए थे और अनेक बौद्ध विहारों का जीर्णोद्धार कराया था।

राहुल सांकृत्यायन और डॉ. मोतीचंद ने भी जयचंद्र को बौद्ध राजा होने की बात कही है।

7.

दक्षिण भारत के अनेक वंशों की निष्ठा बौद्ध धर्म में थी।

जैसे बड़े पैमाने पर बौद्ध मूर्तियों का ब्राह्मणीकरण हुआ है, जैसे बड़े पैमाने पर बौद्ध साहित्य का ब्राह्मणीकरण हुआ है, वैसे बड़े - बड़े बौद्ध राजवंशों का भी ब्राह्मणीकरण हुआ है, मिसाल के तौर पर, सातवाहन राजवंश।

बौद्ध धर्म को संरक्षित करने और फैलाने में जो भूमिका उत्तरी भारत में मौर्यों ने अदा की, वहीं भूमिका दक्षिण में सातवाहनों ने अदा की।

सात तो हिंदी का शब्द है। सातवाहन युग में हिंदी नहीं थी। अतः सत्त /सप्त के अर्थ में सात भी नहीं था। इसलिए जो विद्वान सात को सूर्य के सात घोड़ों से जोड़ते हैं और बताते हैं कि जिनका वाहन सूर्य की भाँति सात घोड़े थे या फिर यह बताते हैं कि सातवाहन सूर्योपासक थे, वे गलतफहमी में हैं।

ताजिंदगी सातवाहनों ने बौद्ध विहार, चैत्यों और बौद्ध गुफाओं का निर्माण कराया। ऐसे कि बौद्ध वास्तुकला को छोड़कर उनकी कोई भी इमारत दूसरी नहीं है।

इसलिए सातवाहन निश्चय ही बुद्ध के विचारों के वाहक थे। आश्चर्य नहीं कि सातवाहनों ने चैत्य प्रकार के सिक्के दक्षिण में ज़ारी किए।

पिछले दिनों नाशिक स्थित बौद्ध गुफाओं का अध्ययन किया। कुल मिलाकर 25 गुफाएँ हैं।

गुफा सं.19 में सातवाहन राजा कान्ह के मंत्री का खुदवाया शिलालेख है।

राजा कान्ह को पुराणों में राजा कृष्ण कहा गया है। वे बौद्ध राजा थे।

गुफा सं. 3 में गोवर्धन का वर्णन है। गोवर्धन क्षेत्र यहीं कहीं था। गोवर्धन राजा कान्ह का सत्ता केंद्र था।

गुफा सं. 17 में यवन राजा दत्तामित्र का खुदवाया शिलालेख है। यह वहीं दत्तामित्र हैं, जिन्हें अर्जुन ने महाभारत में दमन किया था।

महाभारत के आदि - पर्व (141/21-23) में उल्लेख है कि यवनाधिप दत्तामित्र ने तीन वर्ष में गंधर्व (वर्तमान गंधार) देश जीतकर फिर सौवीर देश जीत लिए थे। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ 64)

ये दत्तामित्र कौन हैं? वही प्राकृत का दिमित और बैक्ट्रिया का राजा डेमेट्रियस हैं। इसी दत्तामित्र का शिलालेख गुफा सं.17 में है।

आश्चर्य होता है कि हजारों साल पहले भारत में श्रमण मिनिस्ट्री हुआ करती थी और बाकायदे श्रमण मिनिस्ट्री के कैबिनेट रैंक के मिनिस्टर हुआ करते थे।

इसका प्रमाण नासिक की गुफा सं.19 से मिलता है, जिसके शिलालेख में साफ तौर पर श्रमण मिनिस्ट्री के श्रमण मिनिस्टर का उल्लेख है।

तब भारत में सातवाहन राजा कान्ह का शासन था।

नासिक की गुफा सं. 19 में ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लिखा हुआ एक शिलालेख है।

शिलालेख में लिखा है कि सातवाहन कुल के राजा कान्ह के राज्यकाल में श्रमणों के मंत्री ने यह गुफा बनवाई।

मतलब कि सातवाहन राजाओं के समय में श्रमण मंत्रालय था और श्रमण मंत्रालय के स्वतंत्र मंत्री हुआ करते थे। भारत में श्रमण मंत्रालय खोले जाने का श्रेय राजा कान्ह को है।

सातवाहन राजा कान्ह को अधिकांश इतिहासकारों ने कृष्ण कहा है, जबकि पुरातत्व राजा कान्ह को कृष्ण कहने को मनाही करता है।

भारत के इतिहास में बतौर पहली महिला शासक प्रभावती गुप्त, रानी दिद्दा और रूद्रम्मा देवी से लेकर रजिया सुल्तान के नाम आते रहे हैं।

मगर रुकिए, भारत की पहली महिला शासक नाग कन्या नागनिका थी, जिसका शासन प्रथम सदी ईसा पूर्व में था, जिसके चाँदी के सिक्के महाराष्ट्र से मिले हैं। सिक्कों के ठीक बीचों - बीच रानी नागनिका का नाम लिखा है। इसकी लिपि ब्राह्मी और भाषा प्राकृत है। (चित्र - 31)

लेखिका शुभांगी भडभडे ने मराठी भाषा में रानी नागनिका पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। उपन्यास में नागनिका के साथ - साथ पति सिरी सातकरणि और उनके दो पुत्र प्रमुख पात्र हैं। यह उपन्यास सातवाहन काल पर आधारित है।

नागनिका का मातृ खानदान अंगीयकुल का था और अंगीयकुल मूलतः नागवंशीय था। ये अंगीयकुल के लोग महारठी लिखते थे। यहीं महारठी आधुनिक महाराष्ट्र के महार लोग हैं। महारठियों के कुछ सिक्के उत्तरी मैसूर से मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि वे काफी शक्तिशाली थे।

महारठी उपाधि धारक अंगीयकुल की बेटी नाग कन्या नागनिका की शादी जब सातवाहन घराने के सिरी सातकरणि से हुई, तब बौद्ध सभ्यता की पताका फहराने वाले सातवाहन वंश के गौरव में इजाफा हुआ।

सिरी सातकरणि की मृत्यु के बाद नागनिका ने सातवाहन साम्राज्य का बतौर शासक संचालन किया और इस प्रकार उन्हें भारत की पहली महिला शासक होने का श्रेय है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारत को पहली महिला शासक देने का श्रेय बुद्धिस्ट भारत को है।

अनेक सातवाहन निर्मित बौद्ध इमारतों का ब्राह्मणीकरण भी हुआ है। इसे नीचे के उदाहरण से समझिए।

अर्द्ध पद्म पदक (Half lotus medallion) बौद्ध प्रतीक है। आप अमरावती स्तूप के रेलिंग स्तंभ पर इसे देख सकते हैं।

आंध्र प्रदेश के प्रकासम जिले में त्रिपुरांथकम स्थित बाला त्रिपुर सुंदरी मंदिर के कैंपस से खुदाई के दौरान दो बुद्धिस्ट स्तंभ मिले हैं।

बुद्धिस्ट स्तंभ पर अर्द्ध पद्म पदक उकेरे गए हैं। ब्राह्मी लिपि में लिखावट भी है।

बाला त्रिपुर सुंदरी मंदिर का निर्माण 13 वीं सदी में हुआ था, जबकि ये बुद्धिस्ट स्तंभ सातवाहन काल की प्रथम सदी के हैं।

पुरातत्ववेत्ता डॉ. ई. सिवा नागी रेड्डी ने बताया है कि बाला त्रिपुर सुंदरी मंदिर का निर्माण सातवाहन काल के एक बौद्ध स्थल पर हुआ है।

सातवाहन कालीन अनेक बौद्ध स्थलों की खुदाई अभी बाकी है। इसे नीचे के उदाहरण से समझिए।

आंध्र प्रदेश के कडपा जिले में खाजीपेट के समीप नागानधुनी कोना से पत्थर के बने एक जोड़ी बुद्ध चरण - चिह्न मिले हैं। (चित्र - 32)

इसकी पहली जानकारी एक ट्रांसपोर्ट कंडक्टर रामकृष्ण रेड्डी ने दी।

पुरातत्ववेत्ता डॉ. ई. सिव नागी रेड्डी ने इसे बुद्धपद के रूप में पहचान की है और बताए हैं कि यह सातवाहन काल का है।

डॉ. रेड्डी ने यहाँ बड़े बौद्ध स्थल होने की संभावना व्यक्त की है और खुदाई की माँग की है।

सातवाहन कालीन एक और बौद्ध - स्थल के ब्राह्मणीकरण का नमूना देखिए।

शिव मंदिर के गर्भ - गृह के नीचे बौद्ध स्तूप मिला है। यह बौद्ध स्तूप शिव मंदिर के नीचे दबा हुआ था। यह सनसनीखेज मामला आंध्र प्रदेश के गुंटूर से 25 किमी दूर कोंडविडु किले का है। यह किला रेड्डी साम्राज्य द्वारा 13 वीं सदी में स्थापित है। पुरातात्विक सुलझा रहे हैं कि स्तूप के ऊपर शिव मंदिर का निर्माण जान - बूझकर किया गया है या ऐसा अचानक है।

कभी-कभी जीर्णोद्धार भी इतिहास का राज खोल देता है। दरअसल वहाँ शिव मंदिर के पुराने अंशों को विघटित कर उसे नए सिरे से बनाने की योजना थी, तब तक मंदिर के नीचे दबा स्तूप मिल गया। अब योजना यह है कि मंदिर को वहाँ से स्थानांतरित कर स्तूप को संरक्षित किया जाए।

शिव मंदिर के गर्भ - गृह के नीचे दबे यह स्तूप 4.5 फीट ऊँचा है। व्यास कोई 13 फीट है। स्तूप वृत्ताकार है और चूना पत्थर से बना है। स्तूप में 10 लेयर हैं। नीचे का लेयर कमल के फूल की आकृति का है।

स्तूप संग बहुत खूबसूरत मूर्तिकला का पैनेल मिला है। रेलिंग के ध्वंसावशेष मिले हैं। अष्टकोणीय स्तंभ मिला है। ब्राह्मी में लिखा अभिलेख मिला है। अभिलेख में आठ लेटर्स हैं। लेटर्स सातवाहन कालीन हैं। यदि लेटर्स सातवाहन कालीन हैं तो यह स्तूप लगभग 1800 से 2000 साल प्राचीन है। कोंडविडु कभी बौद्ध केंद्र था। (29 जनवरी, 2019 द हिंदू)

सातवाहनों के भी सभी अभिलेख प्राकृत में हैं।

उत्तर में मौर्य काल तक संस्कृत के अभिलेख नहीं मिलते हैं तो दक्षिण में भी सातवाहन काल तक संस्कृत के अभिलेख नहीं मिलते हैं।

सातवाहनों ने अनेक स्तूप, चैत्य और विहार बनवाए। एक भी दूसरे धर्म की इमारतें इनकी नहीं मिलती हैं।

अमरावती, गोली, जगय्यपेटा, घंटसाल, भट्टीप्रोलु, नागार्जुन कोंडा जैसे स्थानों के स्तूप इन्हीं सातवाहनों के हैं।

पीतलखोरा, नासिक, भाजा, कार्ले, जुन्नार, बेदसा, कोण्डने आदि स्थानों की बौद्ध गुफाएँ, चैत्य इन्हीं सातवाहनों के नाम हैं।

फिर भी इतिहासकार हिंदू धर्म के उन्नायकों में सातवाहनों की गणना बड़े चाव से करते हैं। जबकि सातवाहनों के बनवाए एक भी मंदिर और देवी - देवता की मूर्तियाँ हमें नहीं मिलती हैं।

बताया गया है कि सातवाहन राजे बड़े - बड़े यज्ञ रचाए। आखिर जब सातवाहन राजे संस्कृत नही जानते थे तो फिर किस भाषा के मंत्र - श्लोकों से वे बड़े - बड़े यज्ञ रचाए थे?

8.

यदि किसी नगर, स्थल, पठार, पहाड़ आदि का प्राचीन नाम आप बदल रहे होते हैं तो समझिए कि इतिहास के एक प्रकार के पुरावशेषों को आप नष्ट-भ्रष्ट कर रहे होते हैं।

ब्रिटिश काल में छोटा नागपुर (झारखंड) को चुटिया नागपुर कहा जाता था। आपने चुटिया नागपुर को छोटा नागपुर में बदल दिया। ऐसे में इसका इतिहास बिगड़ गया।

चुटिया नागपुर को चुटु नागवंशियों ने बसाया। पूर्व में ये लोग कर्नाटक में शासन करते थे। प्रथम सदी से आगे कम से कम दो सौ साल से अधिक वहाँ इनका शासन रहा। फिर माइग्रेट किए।

चुटु नागवंश के शासक बौद्ध थे। इनके अधिकांश सिक्के शीशे के बने हैं। सिक्कों पर चाप वाला स्तूप है, बोधिवृक्ष है, त्रिरत्न है। (चित्र 33)

चुटु वंश के बौद्ध राजा चुटकुलानंद थे।

ये प्रथम शताब्दी के बौद्ध राजा थे। इनकी राजधानी कर्नाटक के उत्तर कन्नड जिले के बनवासी में थी।

चुटकुलानंद के सिक्के कारवार में उपलब्ध हुए हैं। ये चुटु वंश के थे। चुटु वंश के सिक्के सीसे के बने हैं। सिक्कों पर बौद्ध धर्म के चिह्न मिलते हैं, जैसे स्तूप, त्रिरत्न आदि।

पूरे कर्नाटक में यदि अशोक के अभिलेख के बाद किसी राजवंश का अभिलेख मिलता है तो वह चुटु वंश है।

बौद्ध सभ्यता के रंग में रंगे चुटु वंश के सिक्के अनेक मिले हैं।

बौद्ध सभ्यता और कला ने कई राजवंशों तथा राजाओं के इतिहास को गर्त में डूबने से बचा लिया है।

उदाहरण के लिए, एक था इखाकु राजवंश (इक्ष्वाकु राजवंश)।

इखाकु राजवंश का शासन तीसरी-चौथी सदी में पूरबी कृष्णा नदी की घाटी में (आंध्र प्रदेश) था।

इनकी राजधानी विजयपुरी में थी। विजयपुरी को ही आज नागार्जुनकोंडा कहा जाता है।

यह नागार्जुनकोंडा है, जहाँ से पहली बार चीन के होने का पहला पुरातात्विक सबूत मिलता है।

नागार्जुनकोंडा बौद्ध स्थल है। इखाकु राजाओं ने यहाँ अनेक बौद्ध स्तूप और विहार बनवाए हैं।

इखाकु राजपरिवार की सभी स्त्रियाँ बौद्ध थीं, जिनके नाम के अंत में " सिरि (श्री) " मिलता है, जैसे अडविचाट सिरि, कोदबबलि सिरि, हम्म सिरि आदि।

बौद्ध होने की हैसियत से इन स्त्रियों ने अनेक बौद्ध इमारतें बनवाई हैं, जिनके नाम शिलालेखों पर अंकित हैं।

यदि यह बौद्ध सभ्यता और कला आज जीवित नहीं होती तो ये सभी राजा - रानी इतिहास के गर्त में डूब जाते।

इखाकु राजाओं का शासन कोई 100 साल रहा। मगर इस राजवंश के सबसे प्रतापी राजा सिरि विर पुरिसदत थे।

इखाकु राजाओं के शासन के पूरे 100 साल में विर पुरिसदत का कोई 20 साल का शासन बौद्ध सभ्यता और कला की दृष्टि से स्वर्ण युग (गोल्डेन एज) माना जाता है।

नागार्जुनकोंडा का पता 1926 में एक स्कूल टीचर ने किए थे। मगर 1882 में ही एक दूसरे बौद्ध स्थल जग्गय्यपेट से हमें इखाकु वंश का पता पहले चल चुका था।

9.

मध्यप्रदेश के सतना जिला के अंतर्गत नागौद तहसील में दुरेहा गाँव है। दुरेहा में एक स्मृति-स्तंभ को पहली बार कनिंघम ने देखा और अपनी रिपोर्ट खंड 21, पृ.99, प्लेट 27 में वर्णन किया। 1932 के सर्दियों में काशीप्रसाद जायसवाल वहाँ गए और लिखा कि दुरेहा एक अच्छा बसा हुआ और रौनकदार गाँव है। स्मृति - स्तंभ गाँव की कच्ची सड़क के किनारे एक चबूतरे के ऊपर है।

स्मृति - स्तंभ पर एक पंक्ति का अभिलेख है। अभिलेख की आँख से देखकर की हुई नकल की तस्वीर नीचे दी गई है। अभिलेख में " वाकाटकों का चक्र " लिखा हुआ है। अभिलेख के नीचे आठ आरे का धम्म चक्र है। यही धम्म चक्र वाकाटकों का राजचिह्न था। (चित्र - 34)

यह धम्म चक्र वैसा ही है, जैसा कि वाकाटक नरेश रुद्रषेण के सिक्कों पर है। यही धम्म चक्र पुनः वाकाटक नरेश पृथ्वीषेण के गंज और नचना वाले अभिलेखों में है। पूरा वाकाटक राज घराना बौद्ध था और उनके राजचिह्न धम्म चक्र था।

ये वही वाकाटक राज घराना के राजे थे, जिन्होंने अजंता में अनेक बौद्ध गुफाएँ बनवाई थीं और बौद्ध धर्म से संबंधित चित्रण और शिल्पकारी की मिसाल पेश किए थे।

इतिहासकारों ने वाकाटक नरेश प्रवरषेण को पुराणों में वर्णित प्रवीर से झूठा तालमेल बैठाकर बता दिया है कि वाकाटक राजा ब्राह्मण थे, और बड़े-बड़े अश्वमेध और बाजपेय यज्ञ रचाए थे। जबकि इतिहास गवाह है कि प्रवरषेण के पुत्र गौतमीपुत्र की शादी नाग शासक भवनाग की बेटी से हुई थी, जिससे उत्पन्न संतान वाकाटक नरेश रुद्रषेण थे। जब वाकाटक राजे ब्राह्मण थे तो नागों से ये कैसा रिश्ता था?

खुद नाग राजे भी बौद्ध थे, जिनका राजचिह्न ताड़ था। भूमरा की इमारत मूल रूप से नागों की थी, जिसे इतिहासकारों ने हड़पकर गुप्त राजाओं के नाम कर दिया है या कि खुद गुप्त राजे हड़प लिए हैं। भूमरा मंदिर के पूरे खंभे ताड़ के वृक्षों के रूप में गढ़े गए हैं। ताड़ वृक्ष का अंकन प्रमाणित करता है कि भूमरा की इमारत नागों की है। नचना की इमारत भी इन्हीं नागों की है, जिसे इतिहासकार गुप्त राजाओं का निर्माण बताए जाने के लिए आमादा हैं। नचना के पार्वती मंदिर की खिड़कियों में से एक में वहीं ताड़ का पेड़ झाँक रहा है, जो नागों का राजचिह्न था।

वास्तुकला के क्षेत्र में गुप्त वंश यदि था तो अत्यंत दरिद्र था। नगर, किले, शाही महल आदि कुछ भी नहीं मिलते। ले- देकर कुछ ईंट की बनी इमारतें मिलती हैं, उन पर भी नाग वंश की छाप लगी है।

भारत के अनेक राज घरानों का कल्पित पुराणों के मनगढ़ंत पात्रों से झूठा तालमेल बैठाकर इतिहासकारों ने इतिहास का विरूपीकरण किया है, जिससे एक बौद्ध घराना वाकाटक भी इसका शिकार हुआ है। इतना ही नहीं, वे अनेक इमारतों की हेराफेरी कर गुप्त काल को स्वर्ण युग की उपाधि दे बैठे।

दक्षिण के चोल राजाओं की बौद्ध कलाकृतियों से इतिहासकार अमूमन परिचित नहीं कराते, जबकि चोल कालीन अनेक बौद्ध कलाकृतियाँ स्वतंत्रता के बाद हमें मिल चुकी हैं।

एक तमिल किसान टी. रामालिंगम को अपने खेत में घर बनाने के लिए नींव खुदाते समय बौद्ध कलाकृतियों का बड़ा खजाना मिला है।

42 कांस्य बौद्ध कलाकृतियाँ, 3 पत्थर और संगमरमर की बौद्ध कलाकृतियाँ मिली हैं। सभी चोल कालीन हैं और चेन्नई म्यूजियम में रखी गई हैं।

यह बौद्ध खजाना तमिलनाडु के तिरुवरुर जिले के सेलुर से मिला है।

अलुपा राजवंश ... एक भूला - बिसरा बौद्ध राजवंश है।

कम से कम हजार साल तक अलुपा राजवंश का शासन कर्नाटक के तटीय क्षेत्र पर बना रहा।

या यूँ कहिए कि दूसरी सदी से 15 वीं सदी तक इनका शासन किसी न किसी रूप में चलता रहा।

इमारतें बदली गईं, लेकिन सिक्के नहीं बदले जा सके।

भारत का यह पहला राजवंश है, जिसके सिक्कों पर बुद्धिज्म के प्रतीक दो मछलियाँ हैं।

बुद्धिज्म के प्रतीक दो मछलियाँ हैं, इसकी पुष्टि दूसरे सिक्के पर अंकित सफेद शंख से होती है।(चित्र - 35)

अलुपा वंश के दो मछलियों को बतौर प्रतीक जहाँगीर ...अवध के नवाब तक ने अपनाए।

आजादी के बाद उत्तर प्रदेश ने इसे राजकीय चिह्न बनाया।

भारत का प्राचीन इतिहास विशेष रूप से पाटलिपुत्र केंद्रित है और मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहास विशेष रूप से दिल्ली केंद्रित है।

चित्रावली



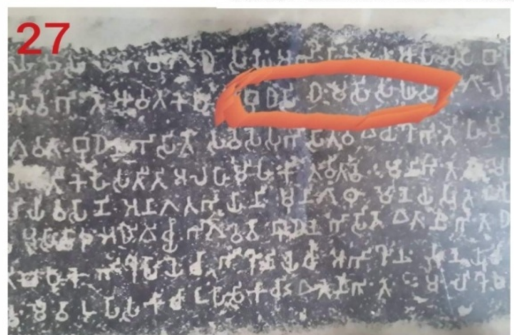


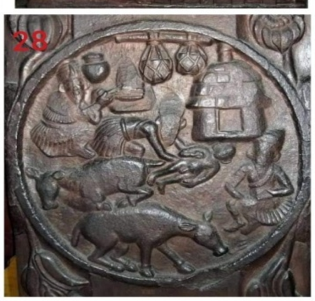


















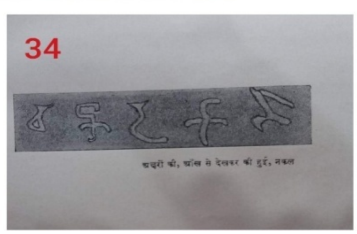
31



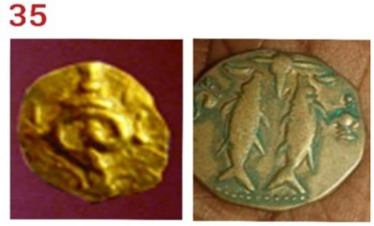
Coin of Queen Naganika







35



बौद्ध संस्कृति की परंपरा

आज जहाँ इराक है, वहाँ कभी सुमेरियन सभ्यता थी।

सुमेरियन सभ्यता का प्राचीन शहर ऊर था। यह समय - समय पर सुमेर की राजधानी थी।

राजधानी ऊर से भारत में बने चूने - मिट्टी के बर्तन मिले हैं। ऊर का सिंगारदान हड़प्पा जैसा है।

द्रविड़ भाषाओं में जो ऊर है, वहीं प्राकृत भाषा में वुर है, यहीं तंजावुर (तंजौर) में है। ऊर स्थानबोधक है।

बुद्ध के समय में बोध गया के निकट उरुवेला था। वह उरुवेला वर्तमान का गाँव उरेल है। सुमेरी भाषा से भारत की द्रविड़ भाषाएँ प्राचीन हैं।

सो सुमेरियन सभ्यता का ऊर भारत से लिया गया है। वो भी सिंधु घाटी सभ्यता से जुड़ने के बाद लिया गया है।

सिंधु घाटी सभ्यता का यह ऊर बुद्धकाल के गाँव उरुवेला से जुड़ता है।

स्वयं सुमेरियन सभ्यता ने भारत से अपनी राजधानी का नाम ऊर लिया था।

सुमेर का प्रसिद्ध नगर निप्पुर था। निप्पुर में पुर है। सुमेरी ऊर और पुर वहीं शब्द हैं, जो पूरे भारत के नगरों में व्याप्त हैं।

सुमेर जिसे कीलाक्षर में शुमेर लिखा जाता था, स्वयं अजमेर, बाड़मेर, आमेर आदि की याद दिलाता है।

बौद्ध कालीन कुसीनारा में जो " नारा " है, वह नगरबोधक है। यह नारा जब " नार " हुआ, तब महनार (बिहार) बना। यह नारा जब " नेर " हुआ, तब बीकानेर (राजस्थान) बना। यह नारा जब " नेरी " हुआ, तब शिवनेरी (महाराष्ट्र) बना। यह नारा जब " नी " हुआ, तब सिवनी (म.प्र.) बना। यह नारा जब " न " हुआ, तब सिवान (बिहार) बना। ऐसे अनेक।

बिहार का न सिर्फ सिवान बल्कि सारन और चंपारन भी इसी " न " की कड़ी में है।

मध्यप्रदेश का न सिर्फ सिवनी बल्कि कटनी और बुधनी भी इसी " नी " कड़ी में है।

राजस्थान का न सिर्फ बीकानेर बल्कि जैसलमेर और अजमेर भी इसी " नेर " (मेर) की कड़ी में है।

सुमेरी लोग मूलतः कृषक और पशुपालक थे। गेहूँ और जौ की खेती करते थे। पशुपालक ऐसे कि उनकी भाषा में 200 शब्द सिर्फ भेड़ों से संबंधित हैं। शब्दों का बाहुल्य बताता है कि सुमेरी लोग भेड़ के चरवाहे थे। तब सिंधु घाटी सभ्यता काफी विकसित थी।

सिंधु घाटी के लोग कृषि युग से आगे जा चुके थे। सिंधु घाटी के नगर पक्की हुई ईंटों के थे और ईंट भी स्टैंडर्ड साइज की थीं।

सुमेरी सभ्यता की ईंटें कच्ची, पक्की - अधपकी, अनियमित साइज की हैं। सिंधु घाटी के लोग सुमेरी लोग से हर क्षेत्र में आगे थे।

हड़प्पा लिपि में कोई 400 तो सुमेरी में 900 लिपि चिह्न थे। सुमेरी लिपि में अधिक चिह्नों का होना साबित करता है कि सुमेरी लिपि सिंधु घाटी से बैकवर्ड लिपि थी।

लिपिविज्ञान का सिद्धांत है कि ज्यों - ज्यों लिपि विकसित होती है, त्यों - त्यों लिपि चिह्नों की संख्या घटती जाती है।

फिर भी एल. ए. वैडेल जैसे इतिहासकार मानते हैं कि चार सहस्राब्दी ईसा पूर्व में सुमेर लोग सिंधु घाटी में बस गए और उन्हीं ने अपनी लिपि का यहाँ प्रसार किए।

सही यह है कि सिंधु घाटी की सभ्यता को सुमेरी लोगों ने नहीं बल्कि सुमेरी लोगों की सभ्यता को सिंधु घाटी के लोगों ने प्रभावित किया है।

और अब तो नए शोध बताते हैं कि सिंधु घाटी सभ्यता जब विकसित थी, तब सुमेरियन सभ्यता का जन्म भी नहीं हुआ था।

2.

गणित में शून्य का आगमन बौद्ध दर्शन से हुआ है। बगैर फिलासफी जीरो की खोज असंभव है।

गौतम बुद्ध के समकालीन बौद्ध दार्शनिक मंजूश्री और विमल कीर्ति के बीच जो संवाद हुआ था, वह शून्य को लेकर था।

यहीं से खुराक लेकर नागार्जुन ने दर्शन के क्षेत्र में शून्यवाद की स्थापना की थी।

बौद्ध दर्शन में जो शून्य है, वहीं अरबी में सिफ़र (सिफ्र) है अर्थात खाली।

अरबी में जो सिफ़र है, वहीं लैटिन में जेफिरम है।

जो लैटिन में जेफिरम है, वहीं अंग्रेजी में जीरो है।

(Zephirum > Zepiro > Zeuero > Zero)

सुन्न जितना नैचुरल है, फर्टाइल है ...शून्य उतना ही आर्टिफिशियल है...शून्य में कोई उपसर्ग- प्रत्यय जोड़ने से ही शब्द - निर्माण संभव है जैसे शून्यता, शून्यवाद, जनशून्य आदि।

सुन्न फर्टाइल है ...सुन्न की शाखाएँ-प्रशाखाएँ दूर - दूर तक फैली हैं ...शरीर सुन्न होता है ... आदमी सन्न रह जाता है ....जगह सुनसान होती है ...सन्नाटा छा जाता है ...सबमें सुन्न है ....शून्य कहीं नहीं।

सुन्न मूल रूप से दर्शन का शब्द है ...मैथमैटिक्स के क्षेत्र में वहीं से आया है। यूरोप और अमेरिका के अनेक गणितज्ञों ने इस बात पर अपनी मुहर लगाई है।

सुन्न का प्रयोग न सिर्फ प्राचीन बौद्ध दर्शन में, बल्कि सिद्धों, नाथों और संतों के साहित्य में भी बड़े पैमाने पर हुआ है।

सुन्न, जिसे लोक जनता आज भी सुन्ना (सिफर, 0) कहती है, हर हाल में प्राकृत धारा की खोज है, जिसमें शून्य की भूमिका शून्य है।

आइंस्टाइन से लेकर हाकिंग तक दुनिया के भौतिक विज्ञानी गुरुत्वाकर्षण, शून्य और समय को लेकर जो अभूतपूर्व काम कर चुके हैं, उसमें एक फाँक बची रही है और दुनिया के भौतिक विज्ञानी इसी फाँक को दूर करने की कोशिश करते रहे हैं।

इस कोशिश के दो अलग-अलग पक्ष आज भी बने हुए हैं, जिनमें से एक सुपर स्ट्रिंग सिद्धांत है और दूसरा लूप क्वांटम ग्रैविटी है। लूप क्वांटम ग्रैविटी को अश्टेकर प्रोग्राम के नाम से भी जाना जाता है। अश्टेकर प्रोग्राम के सिद्धांतकार खुद अश्टेकर हैं।

अश्टेकर ने अपने सिद्धांत की विवेचना करते हुए लिखा है कि छठी सदी ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध ने कहा था कि समय की अवधि शुद्ध रूप से परंपरागत धारणा है, समय और शून्य हमारे अनुभवों की सापेक्षता में अस्तित्वमान होते हैं, बुद्ध ने पुद्गल नैरात्म्य और विज्ञप्ति मात्रता जैसी अवधारणाओं के जो सूत्र दिए थे, उन पर भारत में किसी ने वर्तमान समय में काम नहीं किया।(आलेख : बुद्ध के पुनर्पाठ का समय, मुद्राराक्षस, पृष्ठ 103)

बुद्ध का दर्शन और पश्चिम।

18 वीं और 19 वीं सदी में जर्मनी में जिस विज्ञानवादी दर्शन का विकास हुआ, उस पर बौद्ध विचारक असंग और वसुबंधु ने चौथी सदी में नागार्जुन के शून्यवाद के बाद सबसे महत्वपूर्ण काम किया था।

जिस " ज्ञान - मीमांसा " को पश्चिम के दर्शनशास्त्र में सबसे बड़ी जगह मिली, उसका प्रतिपादन बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग ने किया था। वे बौद्ध दर्शन के बड़े नैयायिक और तर्कशास्त्री थे।

दिङ्नाग के शिष्य धर्मकीर्ति थे और न्यायशास्त्र में उन्होंने भी स्मरणीय काम किया था। धर्मकीर्ति को पश्चिम के दार्शनिकों ने इमैन्युएल कांट की संज्ञा दी थी।

दीपंकर श्रीज्ञान ने 11 वर्ष की अवस्था में गंभीर चिंतन शुरू कर दिया था।

रत्नकीर्ति और ज्ञानश्री मित्र ने तर्कशास्त्र पर काम किया था।

चौथी सदी के कुमारजीव ने वस्तुबोध की प्रक्रिया पर गंभीर वैचारिक लेखन किया था।

इन सारे ही दार्शनिकों को दक्षिण- पूर्वी एशिया से लेकर तुर्की और यूनान तक के देशों ने आमंत्रित किया था।

पश्चिम का दर्शनशास्त्र 20 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में शब्दार्थ दर्शन और उच्चतर गणित की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ अनेक नई मंजिलें तय कर चुका है।

मगर भारत के बौद्धों ने अपने विहारों में असंग से लेकर धर्मकीर्ति तक के काम को आगे क्यों नहीं बढ़ाए? वे बौद्ध धर्म के ऊपरी कलेवर को ही बौद्ध धर्म क्यों माने?

लगभग 8 वीं सदी से दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में बौद्धों का काम बिलकुल गायब है। (आलेख : उत्तर देने का दाव अभी शेष, मुद्राराक्षस, पृष्ठ 54-55)

3.

गौतम बुद्ध की वैज्ञानिक दिशा में सबसे बड़ी और मौलिक स्थापना कारण - कार्य सिद्धांत है। अर्थात कारण ही कार्य का जन्मदाता है। अकारण कुछ भी नहीं होता है और न हो सकता है।

गौतम बुद्ध ने जिस कारण - कार्य सिद्धांत की बुनियाद को छठी सदी ईसा पूर्व में डाला था, उसे समझने में यूरोप को पूरे दो हजार साल से भी अधिक समय लग गए।

पूरे यूरोप में इसे सबसे पहली बार सोलहवीं सदी में फ्रांसीस बेकन (1561 - 1626) ने लिखा और समझाया कि जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले घटनाओं का अध्ययन कारण सहित करना चाहिए, तब सिद्धांत बनाकर उन्हें प्रयोगात्मक जाँच करनी चाहिए।

बुद्धिज्म का जो थेर है, वहीं अंग्रेजी में थ्योरी है। इसीलिए बुद्ध की शिक्षाओं को सिद्धांत कहा जाता है।

यूरोप में जब कारण - कार्य के प्रति चेतना फ्रांसिस बेकन ने फैलाई, तब जाकर गैलिलियो, केपलर और न्यूटन पैदा हुए।

ज्ञान की दुनिया में बुद्ध बेमिसाल हैं।

दुनिया को 1, 2, 3 .... लिखने का तरीका बौद्ध सभ्यता ने सिखाया है।

बौद्ध सभ्यता की धम्म लिपि से लेखन में 1, 2, 3 ..... का विकास हुआ है।

सबसे पहले सातवीं सदी में इसे अरबों ने सीखा और हिंदसा (हिंद देश से प्राप्त) कहा।

अरबों से बारहवीं सदी में इसे यूरोप ने सीखा और अरेबिक कहा।

यूरोप में बारहवीं सदी के बाद जो वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति हुई, उसमें बौद्ध सभ्यता के 1, 2, 3 ......का बहुत बड़ा योगदान है।

रोमन अंकों के लेखन में जटिलता है। अरेबिक में सहजता है। अरेबिक ने जोड़ - घटाव की प्रक्रिया को सहज किया।

यही कारण है कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति 12 वीं सदी के बाद हुई, तब जब लोगों ने अरबों से अरेबिक सिखी।

हर सभ्यता बौद्ध सभ्यता नहीं होती!

4.

बौद्ध सभ्यता ने अनेक देशों को नाम दिए हैं, जिसका पता उन देशों को भी नहीं है।

भाषावैज्ञानिकों ने बताए हैं कि श्रीलंका का सिलोन (Ceylon) नाम पुर्तगालियों की देन है।

मगर ह्वेनसांग ने पुर्तगालियों के श्रीलंका में आने के सैकड़ों साल पहले ही लिख दिया है कि इसे आजकल " सिलन गिरि " भी कहते हैं।

पुर्तगालियों से पहले श्रीलंका के लिए " सिलन " नाम प्रचलित था, वहीं " सिलोन " है।

पालि की एक पारिभाषिक शब्दावली " सीलन " है। " सीलन " का सीधा- सीधा अर्थ होता है - " विनय (विनयपिटक के नियम) के अधीन रहना "।

श्रीलंका अभी भी बौद्ध देश है और ह्वेनसांग के समय में कहीं अधिक बुद्धप्रिय देश था। इसके अनेक प्रमाण हैं। जो बौद्ध ग्रंथ फाहियान को भारत में नहीं मिले, वो श्रीलंका में मिले।

विनय के अधीन तब श्रीलंका की अधिसंख्य आबादी रहती थी। तब यह ठीक जान पड़ता है कि इसी सीलन से सिलोन (Ceylon) का विकास हुआ है।

(नोट : - सिंहल द्वीप का एक नाम " सिलन गिरि " था। ह्वेनसांग की भारत - यात्रा, पृ. 403, ठा. प्र. शर्मा / सीलन का अर्थ " विनय के अधीन रहना " है। (पालि - हिंदी कोश, पृ. 351, भ. आ. कौशल्यायन)

चीन का प्राचीन नाम चाहे जो भी रहा हो, ईसा से कोई दो सदी पूर्व इस देश का नाम चीन / चाइना प्रचलित हुआ, यह वही समय है, जब बुद्ध का झान (ध्यान) चीन पहुँचा, जिसे चीनी भाषा में चान / चिआन कहा जाता है।

बुद्ध का झान जब चीन पहुँचा, तब उसका नाम चीन / चाइना प्रचलित हुआ।

बुद्ध के चान / चिआन से चीन / चाइना के नाम का जरूर कोई संबंध है। यदि नहीं है तो विचार कीजिए कि दक्षिण - पूर्व एशिया को हिंद- चीन और मध्य एशिया के बड़े भू - भाग को चीनी - तुर्किस्तान क्यों कहा जाता है, जबकि प्राचीन काल में ये सब इलाक़े बौद्ध धर्म से जुड़े थे।

इसी प्रकार तिब्बत निवासी खुद अपने देश को बोद् के नाम से संबोधित करते हैं। यह बोद् क्या है? वहीं बुद्ध की ही एक उच्चारण - रीति है और जो भोट है, वह बोद् की तर्ज़ पर है तथा इसी भोट से भूटान बना है।

हड़प्पा और मुअनजोदड़ो में अन्नागार मिले हैं। हड़प्पा में राजमार्ग के दोनों ओर ऊँचे चबूतरों पर विशाल अन्नागार बने हुए थे।

अन्नागार की यह परंपरा पूर्व मौर्य काल और मौर्य काल में भी चलती रही। आश्चर्य कि ये भी सिंधु घाटी सभ्यता की तरह राजमार्ग पर ही बने।

सोहगौरा ताम्रपत्र में अन्नागार बनाए जाने का उल्लेख है। यह अन्नागार भी चौराहे पर बना था। इस अभिलेख में दो अन्नागारों के निर्माण का उल्लेख है, जिनमें तीन कमरों के होने की चर्चा की गई है।

सोहगौरा ताम्रपत्र गोरखपुर क्षेत्र के सोहगौरा नामक गाँव से मिला है। लगभग चौथी सदी ई. पू. का है।

सबसे ऊपर बौद्ध धर्म के प्रतीक चिह्न हैं जैसे बोधिवृक्ष, स्तूप आदि। बोधिवृक्ष जो ताम्रपत्र पर सबसे पहले है, इसे बिहार सरकार ने अपना राज्यचिह्न बनाया है। दो प्रतीक कोष्ठागार

के हैं जो भवन जैसे दिखाई पड़ रहे हैं। यह भवन वास्तुकला का अभिलेखीय प्रमाण प्रस्तुत करता है।

कोष्ठागार के दो भवन इसलिए कि ताम्रपत्र में दो कोष्ठागार (अनाज संचयन हेतु) आपत काल में जनहित के लिए बनाए जाने का उल्लेख है।

सिंधु घाटी सभ्यता के नगरों में पक्की ईंटों से बने स्नानघर और शौचालय थे। शौचालय का निर्माण सिंधु घाटी सभ्यता की खास विशेषता है।

ईसा पूर्व 1200 में मिश्र में शौचालय मिलते हैं। प्रथम शताब्दी में रोमन सभ्यता में शौचालय मिलते हैं। ग्रीक में भारत से जो ज्ञान पहुँचा, रोमन सभ्यता में शौचालय का इस्तेमाल संभवत उसकी परिणति है।

सिंधु घाटी सभ्यता से शौचालय की यह परंपरा बौद्ध मठों तक पहुँचती है।

वैशाली म्यूजियम में एक टॉयलेट पैन रखा है। यह वैशाली के कोल्हुआ की खुदाई से मिला था।

टॉयलेट पैन पहली - दूसरी सदी का है। कोई 18 - 19 सौ साल पुराना है। यह एक बौद्ध मठ से मिला है।

टॉयलेट पैन का व्यास 88 सेंमी और मोटाई 7 सेंमी है। पावदान की लंबाई 24 सेंमी और चौड़ाई 13 सेंमी है।

टॉयलेट पैन टेराकोटा का बना है। लट्रीन और यूरिन के लिए अलग-अलग छेद हैं।

अनुमानतः यह भिक्षुणियों की मोनेस्ट्री का टॉयलेट पैन है।

आज खुले में शौच से मुक्ति की बात हो रही है, तब विचार कीजिए कि इस दिशा में बौद्ध सभ्यता का क्या योगदान है।

5.

सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों की लेखन - कला कई मामलों में धम्म लिपि (ब्राह्मी लिपि) के लोगों की लेखन - कला से मिलती - जुलती है।

सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि और धम्म लिपि के कम से कम 10 लेटर एक जैसे हैं। (चित्र - 36)

इतना ही नहीं, सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि और तमिल ब्राह्मी लिपि के कम से कम 5 लेटर एक जैसे हैं। (चित्र- 37)

सिंधु घाटी की प्राक् बौद्ध सभ्यता और गौतम बुद्ध तथा उनके बाद की बौद्ध सभ्यता के बीच लेखन - कला में तालमेल है। परंपराएँ मरती नहीं हैं।

वे इतिहासकार जो मौर्यों की कारीगरी को ईरान में जाकर खोजते हैं, वे क्यों नहीं बताते हैं कि मौर्यों का शाही महल ईरान के सूसा और एकबटना के शाही महल से किस कारण अधिक सुंदर और शानदार था।

पाटलिपुत्र का शाही महल ईरान के शाही महल से अधिक सुंदर और शानदार था, यह बात न तो भारत और न ईरान के इतिहासकारों ने बताई है बल्कि यूनान के इतिहासकारों ने बताई है। पक्षपात की कोई गुंजाइश नहीं है।

अब अशोक कालीन रामपुरवा के बैल की मूर्ति को लीजिए, देखिए पूरा मूर्ति - विन्यास सिंधु घाटी के उस कूबड़दार वृषभ (तथाकथित) से मेल खाता है।

यदि कोई शक हो तो फिर मौर्य कालीन हाथी के उत्कीर्णन को देखिए, वो भी सिंधु घाटी सभ्यता के सीलों पर उत्कीर्ण हाथी से कैसे मेल खाता है।(चित्र - 38)

भला जिस देश के पास सिंधु घाटी की विरासत हो, वह कहाँ - कहाँ की जूठन खाता चलेगा?

सिंधु काल के प्रीस्ट किंग की मूर्ति तथा मौर्य काल की यक्षिणी की मूर्ति की तुलना कीजिए।

दोनों मूर्तियों की नाक टूटी हुई है और दोनों का एक - एक हाथ टूटा हुआ है। यह आकस्मिक हो सकता है।

मगर दोनों मूर्तियों के सिर पर जो गोलाकार शिरोभूषण है, वह आकस्मिक नहीं है, वह एक खास किस्म की सभ्यता के संकेतक है और वह सभ्यता है - बौद्ध सभ्यता।

मौर्य काल और सिंधु घाटी सभ्यता का काल - दोनों बौद्ध सभ्यता में भीगा हुआ काल है। इसीलिए दोनों काल की मूर्तियों में मौजूद गोलाकार शिरोभूषण की समानता आकस्मिक नहीं है। (चित्र - 39)

गुंबद ....एक प्रकार की अर्द्ध गोलाकार छत है। छत मनुष्य ने घर में रहने लिए बनाई है।

गुंबद को अंग्रेजी में Dome कहते हैं। Dome घर से जुड़ा है। इसलिए घरेलू को अंग्रेजी में Homestic नहीं, Domestic कहते हैं।

रूसी में दोम अर्थात घर, लैटिन में डोमस अर्थात घर। Dome अर्थात गुंबद घर से जुड़ा है। इसलिए गुंबद का इतिहास मानव सभ्यता में प्राचीन है।

मगर ईंट - पत्थरों से स्पष्ट तथा स्वतंत्र गुंबद बनाए जाने का स्पष्ट इतिहास हमें भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वप्रथम बौद्ध परंपरा में मिलता है। आप इसे डबल गुंबद भी कह सकते हैं।

गुंबद बना स्तूप गुंबात स्तूप है। यह स्तूप पाकिस्तान की स्वात घाटी में बारीकोट से 9 किमी दक्षिण है। (चित्र - 40)

स्तूप के ऊपर गुंबद बना है। इसीलिए इस स्तूप को गुंबात स्तूप कहते हैं। गुंबात पश्तो भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ गुंबद होता है।

भारतीय प्रायद्वीप में किसी इमारत पर स्पष्ट एवं डबल गुंबद बनाए जाने का यह पहला स्पष्ट प्रमाण है, जिसका निर्माण- काल ईसा की दूसरी सदी के बाद नहीं ले जाया जा सकता है।

भारत में मध्यकालीन इमारतें गुंबदयुक्त है तो यह बौद्ध स्थापत्य की देन है।

मध्यकाल में अष्टकोणीय इमारतें खूब बनी हैं। शेरशाह का मकबरा अष्टकोणीय है।

मुंडेश्वरी मंदिर भी अष्टकोणीय है।

बौद्ध स्थापत्य कला में अष्टकोणीय का अपना महत्व है। मनौती स्तूप की डिजाइन अष्टांगिक मार्ग के कारण अष्टकोणीय होती है। कुएँ भी अष्टकोणीय बने हैं। अष्टकोणीय कुआँ सासाराम में भी है, जिसे हथिया कुआँ कहा जाता है और बोध गया के क्षेत्र में भी हैं।

न केवल मनौती स्तूप बल्कि अन्य बड़े स्तूप भी अष्टकोणीय बनाए गए हैं। अष्टकोणीय स्थापत्य बौद्धों की देन है। अष्टांगिक मार्ग के प्रतीक स्वरूप बनाए गए हैं। बाद में अन्य संस्कृतियों के लोगों ने इस अष्टकोणीय स्थापत्य को अपना लिए।

धम्म चक्र का इतिहास पुराना है। सिंधु घाटी सभ्यता की सीलों पर छः तिलियों का धम्म चक्र मिल जाएगा। धोलावीरा के साइनबोर्ड पर भी छः तिलियों का धम्म चक्र है। (चित्र - 41)

बुद्ध के समय में आठ तिलियों के धम्म चक्र बने। अशोक ने 24 और 32 तिलियों के धम्म चक्र का इस्तेमाल किए। 32 से अधिक तिलियों के भी धम्म चक्र बने।

धम्म चक्र प्रकार के स्तूप भी बने। संघोल के स्तूप उदाहरण हैं। धम्म चक्र प्रकार का स्तूप धोलावीरा में भी मिला है।

सिंधु घाटी की सभ्यता ने 6 तिलियों वाला धम्म चक्र का इस्तेमाल लिपि में किया था।

गौतम बुद्ध ने 8 तिलियों वाला धम्म चक्र का इस्तेमाल शिक्षा में किया था।

सम्राट अशोक ने 24 और 32 तिलियों वाला धम्म चक्र का इस्तेमाल शासन में किया था।

ऐसे ही धम्म चक्र का कदम सिंधु घाटी सभ्यता से मौर्य काल तक बढ़ते गया।

जब बुद्ध थे, तब पीपल को पूरा यूरोप नहीं जानता था .....सेंट्रल अमेरिका और कैरिबियन क्षेत्र में तो पीपल 19 सदी के आखिरी दौर में पहुँचा।

बुद्ध के कई सदी बाद वनस्पतिविज्ञानियों ने पीपल का बटैनिकल नाम Ficus Religiosa रखा। यह नाम गौतम बुद्ध के कारण पड़ा।

पीपल का Sacred Fig नाम भी बुद्ध के कारण हुआ। अंग्रेजी में जो पीपल का नाम Bo Tree है, वह Bodhi Tree का संक्षिप्त रूप है। पीपल से वाकिफ न होने के कारण

यूरोपीय भाषाओं में पीपल का कोई आॅरिजनल नाम नहीं है।

एशिया के वे देश बेहद ख़ुशनसीब हैं कि उन्हें पीपल से परिचय तब हो गया, जब वे धम्म के शरणागत हुए। गौतम बुद्ध के कारण पीपल को एशिया में पहचान मिली।

बुद्ध ने यह पीपल सिंधु घाटी की प्राक बौद्ध सभ्यता से अर्जित किए थे और उसे Tree of Awakening (बोधिवृक्ष) की दुबारा ऊँचाई दी।

बुद्ध से पहले दीपंकर बुद्ध का बोधिवृक्ष यहीं पीपल था। वे चौथे बुद्ध थे और सिंधु घाटी सभ्यता के समकालीन थे।

साल 2019 में लखीसराय के सूर्यगढ़ा प्रखंड के रामपुर गाँव के पश्चिम स्थित भेलवा पोखर की खुदाई में काले पत्थर का यह बौद्ध स्मारक मिला है। (चित्र - 42)

बौद्ध स्मारक कोई 46 किलो का है। दो मंजिला है। प्रत्येक मंजिल पर 4 - 4 बुद्ध उकेरे गए हैं। कुल 8 बुद्ध की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

यह संयोग नहीं बल्कि जान - बूझकर आठों उत्कीर्ण बुद्ध प्रतिमाओं का नाक - नक्शा (हुलिया) बिगाड़ा गया है ताकि प्रतिमा की शिनाख्त नहीं हो सके।

संयोग कहिए कि स्मारक के निचले हिस्से में दो पंक्तियों का अभिलेख है - ये धम्मा हेतुपप्भवा ...।

यह वहीं प्रसिद्ध सूक्ति है, जिसे बौद्ध साहित्य में अस्सजी - सारिपुत्त संवाद के रूप में जाना जाता है।

यह सूक्ति अस्सजी की है, जिसमें उन्होंने संक्षेप में सारिपुत्त को धम्म का सारांश बताए हैं।

वह सारांश यह है कि जो घटनाएँ कारण से पैदा होती हैं, तथागत ने घटनाओं के कारण बताए हैं और उनका रोकने का उपाय है, उसे भी बताए हैं।

दरअसल यह बौद्ध स्मारक महाबोधि मंदिर का भावानुवाद है, प्रतिकृति नहीं है।

दुनिया में आज भी महाबोधि मंदिर की कोई 39 प्रतिकृतियाँ मौजूद हैं और जो अमेरिका और चीन - जापान - कोरिया से लेकर नेपाल, बर्मा, श्रीलंका तथा थाईलैंड तक फैली हैं।

गौतम बुद्ध का कपिलवस्तु ठीक वैसा ही बसा हुआ था, जैसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ो के नगर बसे हुए थे।

दो भागों में - एक रिहायशी क्षेत्र और दूसरा धार्मिक क्षेत्र।

कपिलवस्तु का रिहायशी क्षेत्र गनवरिया था और धार्मिक क्षेत्र पिपरहवा था। गनवरिया और पिपरहवा दोनों मिलकर कपिलवस्तु था। बुद्ध का घर गनवरिया के रिहायशी क्षेत्र में था।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो जैसे नगरों में भी रिहायशी क्षेत्र अलग था और धार्मिक क्षेत्र अलग था, जिसे पुरातात्विकों ने स्तूप क्षेत्र कहा है।

सिंधु घाटी सभ्यता की नगर - योजना से कपिलवस्तु की नगर - योजना का साम्य संभवत आकस्मिक नहीं है।

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा में पठियार गाँव के पास पठियार शिलालेख है। स्थानीय लोगों की मान्यता है कि विस्मयकारी लिपि में लिखे गए इस शिलालेख को कोई समझ नहीं पाया है।

लेकिन शिलालेख में नीचे और ऊपर सिर्फ दो पंक्ति लिखी हुई है। ऊपर की लिपि धम्म और नीचे की लिपि खरोष्ठी है।

ऊपर लिखा है - वायलस पुकरिणी और नीचे लिखा है - राठि दारास वायलस पुकरिणी।

ऊपर का अर्थ हुआ - सार्वजनिक जलाशय और नीचे का अर्थ हुआ - राष्ट्रिक दारा का सार्वजनिक जलाशय।

मगर लिपि में ही पठियार शिलालेख पर स्वस्तिक बना है। अनेक धम्म लिपि के अभिलेखों में स्वस्तिक मिलता है। आश्चर्यजनक रूप से स्वस्तिक की यह परंपरा सिंधु घाटी सभ्यता से जुड़ती है। वहाँ भी स्वस्तिक मिलते हैं।

अनेक बौद्ध घटनाएँ परिवर्तित रूप में बाद के साहित्य में मिलती हैं।

जैसा कि पालि साहित्य से पता चलता है कि गौतम बुद्ध मथुरा से वेरंजा गए थे और अनेक लोगों ने माना है कि वेरंजा ही व्रज है।

वेरंजा उत्तर प्रदेश के ब्रजभाषा क्षेत्र के ब्रजमंडल में एटा से 16 किमी की दूरी पर उत्तर में है।

वेरंजा की पहचान अतिरंजी खेड़ा से की गई है। अतिरंजी खेड़ा की खोज कनिंघम ने 1861 - 62 में की थी।

अतिरंजी खेड़ा वर्तमान में काली नदी के किनारे है। काली नदी कन्नौज में कालिंदी के नाम से मशहूर है।

अर्थात वेरंजा कालिंदी नदी के किनारे था और हिंदी के मध्यकालीन कवियों ने स्मृति - अवशेष के रूप में ब्रज को कालिंदी नदी के किनारे बताया है।

रसखान ने लिखा -- कालिंदी कूल कदंब की डारन - अर्थात वे ब्रज के कदंब वृक्ष कालिंदी नदी के किनारे खड़े थे।

कवि गंग ने लिखा -- कालिदह कालिंदी -- अर्थात कालिंदी में कालिदह था। कालिदह तो काली नदी का दह (नदी का गहरा भाग) रहा होगा।

आज की काली नदी पहले की कालिंदी है। पर्शियन लेखकों ने कालिंदी का नाम काली नदी किया है और यह कवि गंग के समय में प्रचलित थी।

वर्तमान में यमुना का एक नाम कालिंदी है। मगर यमुना को कालिंदी नाम बाद के साहित्य में मिला है।

पहले के साहित्य में कालिंदी और यमुना अलग-अलग नदियाँ थीं। वाल्मीकि रामायण में दो नदियों का अलग-अलग उल्लेख है -- " कालिंदीं यमुनां रम्यां " (4. 40.21)।

आज का ब्रज यमुना नदी के किनारे है और तब का वेरंजा कालिंदी के तट पर था।

हिंदी साहित्य में गोपियों के विरह को बैठे ठाले का विलाप कहा गया है। कारण कि कृष्ण ब्रज से मथुरा चले गए थे और आज के ब्रज से मथुरा की दूरी कुछ मिनटों की है।

एक और उदाहरण।

घूमते - घूमते ह्वेनसांग गांधार क्षेत्र में पहुँचे,
फिर पुष्कलावती गए।

पुष्कलावती के पास एक स्तूप था। वह बोधिसत्व श्रमक की स्मृति में बना था।

बोधिसत्व श्रमक वहीं रहकर अपने अंधे माता - पिता की सेवा करते थे।

एक दिन का वाकया है कि वे अपने अंधे माता-पिता के लिए फल लाने गए थे।

तभी एक राजा जो शिकार के लिए निकले थे, श्रमक को अनजाने में बिष - बाण से मार दिए।

श्रमक बोधिसत्व मरे नहीं बल्कि उनका घाव औषधि से ठीक हो गया।

माता - पिता की सेवा करनेवाले बोधिसत्व श्रमक की स्मृति में वह स्तूप बना था। यहीं बुद्धिज्म है।

श्रमक का यह इतिहास पढ़कर जाने क्यों पुराणों के श्रवण कुमार याद आए।

(ह्वेनसांग के यात्रा- वृतांत से साभार)

अनेक जगहों पर बुद्ध की मूर्तियाँ दूसरे नामों से भी पूजी जाती हैं - कहीं मोरवा बाबा हैं, कहीं तेलिया मसान हैं तो कहीं दूसरे धर्म के देवी - देवता में रूपांतरित हो गए हैं।

कहीं - कहीं एक बुद्ध विरोधी परंपरा बनाकर भी बौद्ध- स्थलों को तोड़ने- फोड़ने की कवायद हुई है।

एक उदाहरण प्रस्तुत है।

बोज्जनकोंडा एक बौद्ध स्थल है। यह आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम के संकरम (संघाराम) में स्थित है। मकर संक्रांति के अगले दिन यहाँ " कनुमा दिवस " मनाए जाने की परंपरा है।

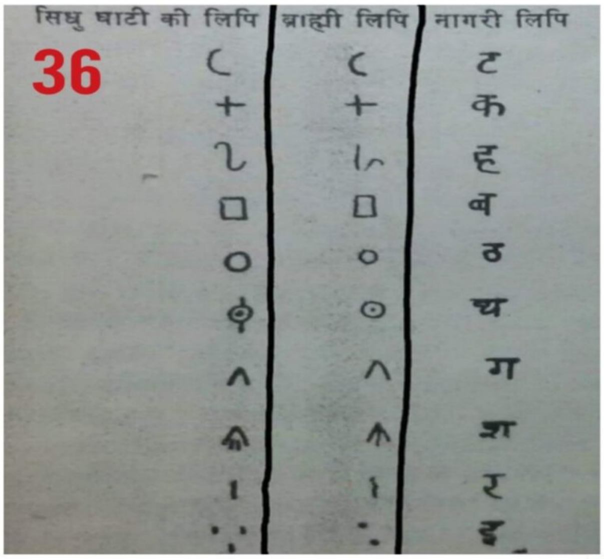
कनुमा दिवस के मौके पर यहाँ सैकड़ों लोग जुटते हैं। बड़े उत्तेजित भाव से पत्थरों की बौछार करते हैं। बौद्ध स्थल के ही पत्थरों को उखाड़ कर बौद्ध स्थल पर ही फेंकते हैं।

दानव मानकर फेंकते हैं और बौद्ध स्थल नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। विगत कुछ सालों से यह पुरानी परंपरा लगभग बंद हो चुकी है। बावजूद इसके वहाँ इस साल 2020 में भी जिला प्रशासन मुस्तैद था।

अलेक्जेंडर रीम ने 1906 में खुदाई की थी। तब पत्थर फेंकने का रिवाज नहीं था। संभवतः 1920 के दशक में यह रिवाज प्रचलित हुआ।

अफसोस कि 1920 के दशक में जब पूरा देश अंग्रेजों को बाहर निकालने में लगा था, तब कुछ लोग 1920 के ही दशक में बुद्ध की यह दुर्गति कर रहे थे।

चित्रावली


सिंधु घाटी की लिपि
ब्राह्मी लिपि
नागरी लिपि
36


37
KEELADI and INDUS
GRAFFITIES
KEELADI
INDUS
INDUS SIGN - 225
INDUS SIGN - 307
INDUS SIGN - 365
INDUS SIGN - 318
INDUS SIGN - 347


38


39


40


41


42
REDMI NOTE 7 PRO
AI DUAL CAMERA
2019/6/21 20:37

परिशिष्ट

फाहियान

फाह्यान ने चंद्रगुप्त द्वितीय के राज्य-काल में भारत की यात्रा की थी । अपनी यात्रा में उन्होंने तकरीबन 30 देशों का भ्रमण किया ।वह चीनी यात्री थे। उनका जन्म चीन के उयंग नामक स्थान पर हुआ था तथा उनके बचपन का नाम कुङ था। बौद्ध ग्रंथों के गहन अध्ययन एवं बौद्ध- स्थलों को देखने की लालसा से वे चीन से चलकर भारत पहुँचे थे। वह स्थल मार्ग से भारत आए थे और समुद्री मार्ग से वापस गए ।

फाह्यान भारत के बारे में जो समझे तथा देखे, वह उनके यात्रा- विवरण में दर्ज है। यात्रा-विवरण के बारे में जो विवाद है, वह यह है कि उन्होंने यह यात्रा-विवरण अपनी कलम से लिखे या नहीं। जो भी हो, इतना तो तय है कि फाहियान का यात्रा विवरण भारत के इतिहास, विशेषकर बौद्ध भारत के इतिहास के लिए बेहद जरूरी सामग्री उपलब्ध कराता है।

फाहियान का यात्रा विवरण मूलतः चीनी भाषा में है। इसका बेहतरीन अंग्रेजी अनुवाद जेम्स लेगी महोदय ने किया है। जेम्स लेगी ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में चीनी भाषा और साहित्य के पहले प्रोफेसर थे। ऐसी हालत में यह उम्मीद की जानी चाहिए कि एक चीनी भाषा और साहित्य के प्रोफेसर ने चीनी भाषा में लिखे गए यात्रा-विवरण का अनुवाद अच्छा किया होगा। जेम्स लेगी ने अपने अनुदित ग्रंथ के अंत में यात्रा-विवरण के मूल पाठ भी दिए हैं ।

बात 1918 की है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से फाह्यान का हिंदी में यात्रा-विवरण प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक जगन्मोहन वर्मा बस्ती जिले के रहने वाले थे। उन्हें अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू की अच्छी जानकारी थी। बाद में उन्होंने पालि और प्राकृत का भी अध्ययन किया। कुछ दिनों बाद तक वर्मा जी का कालाकांकर रियासत में रहे और हिंदुस्तान के संपादन विभाग में काम किए। बाद में वे काशी आए तथा नागरी प्रचारिणी सभा से जुड़ गए । यही वे 'हिंदी शब्द सागर' के सहायक संपादक नियुक्त हुए और अंत में वे काशी में ही चल बसे।

जगमोहन वर्मा चीनी भाषा से वाकिफ नहीं थे। संयोग से एक चीनी श्रमण जिनका नाम वाङ–हुई था, काशी आए और वर्मा जी के सान्निध्य में संस्कृत का अध्ययन करने लगे। वर्मा जी के पास अध्ययन के सिलसिले में साल भर से अधिक रहे। वर्मा जी ने उसी चीनी छात्र से चीनी भाषा सीखी और उनके पास जो उनके पास संस्कृत सीखने आए थे। जब जगन्मोहन वर्मा चीनी भाषा के जानकार हुए, तब चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरणों का हिंदी

भाषा में अनुवाद करने की बात उनके मन में आई। परिणामत: एक दिन वे फाहियान के यात्रा-विवरण को हिंदी में बखूबी अनुवाद करने में सफल हुए । यही अनुवाद 1918 में नागरी प्रचारिणी सभा से छपा।

जगन्मोहन वर्मा मौलिक अनुवादक थे। उन्होंने जेम्स लेगी के अंग्रेजी अनुवाद का अंधानुकरण नहीं किया, बल्कि यात्रा-विवरण के मूलपाठ से भी मिलान कर उसका हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किया। मिसाल के तौर पर, जेम्स लेगी ने अपने अंग्रेजी अनुवाद में आले से शांचे की दूरी तीन योजन बताई है, जबकि फाह्यान ने मूलपाठ में यह दूरी दस योजन बताई है। वर्मा जी जेम्स लेगी की ऐसी अशुद्धियों को मूलपाठ से मिलान कर अपनी हिंदी अनुवाद में संशोधित रूप से प्रस्तुत किया। अनेक जगहों पर अपनी मौलिक टिप्पणियाँ भी दीं। मगर इतना जरूर है कि वर्मा जी भी हिंदी अनुवाद में कई जगह हिंदू मानसिकता के शिकार हो गए। मिसाल के तौर पर, वर्मा जी ने जेम्स लेगी के Make Offerings का हिंदी अनुवाद पूजा किया है, जबकि बौद्ध धर्म के अनुसार श्रद्धाभाव संप्रेषण होना चाहिए। कारण की पूजा मूलतः हिंदू धर्म के लिए रूढ़ है।

ह्वेनसांग

भारत में इतना आकर्षण था कि यहाँ अनेक विदेशी आए और गए। अनेक सोना तो अनेक चाँदी ले गए। ये तो चीनी बौद्ध यात्री थे, जिन्होंने सोना–चाँदी नहीं बल्कि पुस्तकें ले जाना पसंद किया। स्वयं ह्वेनसांग भी 657 पुस्तकों की पांडुलिपियाँ साथ ले गए। इत्सिंग ने अपने यात्रा विवरण के आरंभ में लिखा है कि चीन से भारत और उसके पड़ोसी देश देशों में अब तक 56 बौद्ध यात्री आ चुके हैं। इत्सिंग कोई 400 और ह्वेनसांग 657 बौद्ध ग्रंथों की पांडुलिपियाँ अपने साथ चीन ले गए थे। विचार कीजिए कि जब दो बौद्ध यात्री कोई 1000 बौद्ध पांडुलिपियाँ चीन ले गए, तब 56 बौद्ध यात्री कितनी पुस्तकें चीन ले गए होंगे। वाकई भारत बौद्ध साहित्य का अकूत खजाना था।

ह्वेनसांग ने अपनी पुस्तक 'सीयूकी' में अपनी यात्राओं का जो विवरण हमें प्रदान किया है, उसका प्रथम अनुवाद आधुनिक काल में स्टैनिस्लैस जूलियन ने प्रस्तुत किया है। स्टैनिस्लैस जूलियन (1797–1873) फ्रांस के थे तथा चीनी विद्या के मर्मज्ञ विद्वान थे। 1850 के दशक में सर्वप्रथम उन्होंने ही ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत का फ्रेंच भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया था। बाद में 1884 में सैम्युअल बील ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया । सैम्युअल बील (1825–1889) चीनी भाषा से अंग्रेजी में सीधा अनुवाद करने के अधिकारी विद्वान थे। उन्होंने न सिर्फ ह्वेनसांग का यात्रा वृतांत अपितु उनकी जीवनी भी अंग्रेजी में उपलब्ध कराई है। ह्वेनसांग की एक जीवनी उनके मित्र हई–ली (Hwui–li) ने लिखी थी। बील ने इसका अनुवाद "ह्वेनसांग का जीवन" (Life of Hiuen Tsang) नाम से किया है। बील के बाद ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत को अंग्रेजी में प्रस्तुत करने का श्रेय थॉमस वाटर्ज को जाता है। थॉमस वाटर्ज (1840–1901) प्राच्य– विद्या के विशेषज्ञ थे। थॉमस वाटर्ज की आधार सामग्री पर रिज डेविड ने "ह्वेनसांग की भारत यात्रा" (On Yuan Chwang's Travels in India, London ,1904) को अंग्रेजी में संपादित किया था।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "विश्व इतिहास की झलक" में दुनिया की एक से बढ़कर एक सभ्यताओं, साम्राज्यों तथा राजाओं का वर्णन किया है ।लेकिन उन्होंने दुनिया का इतिहास लिखते हुए सबसे पहले किसी राजा को नहीं बल्कि 'यात्रियों के राजकुमार ह्वेनसांग' को याद किया है। इससे दुनिया के इतिहास में ह्वेनसांग के महत्व को समझा जा सकता है। वे बड़े जीवट के ज्ञान–पिपासु थे, रास्ते में बहुत मुसीबतें झेलीं, अनेक खतरों का सामना किया तथा ठंडे रेगिस्तानों और पहाड़ों को पार कर भारत आए। एक प्राचीन चीनी पुस्तक के हवाले से नेहरू ने ह्वेनसांग का हूलिया बताया है कि वह सुंदर और लंबे थे । रंग–ढंग नाजुक और आँखें चमकदार थीं, चाल–ढाल गंभीर और शानदार थी, रूप से तेज और मनोहरता टपकती थी... उनके व्यक्तित्व में पृथ्वी को घेरे हुए विशाल समुद्र की गंभीरता

पाई जाती थी और जल में पैदा होने वाले कमल के समान शांति और सुषमा विराजमान थी।

तब चीन में तांङ वंश और भारत में वर्धन वंश का शासन था। सम्राट ताईचुङ के जमाने में ह्वेनसांग भारत आए। वह 629 ई. में चीन से चलकर हिंद चीन पहुंचे। वहाँ कुछ दूर तक तारीम नदी की उतरी बस्तियों में होते हुए फिर थीयानशान पर्वत को लांघकर ताशकंद, समरकंद और अफगानिस्तान के रास्ते कश्मीर पहुँचे और भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमने तथा कई जगहों में बरसों पढ़ने के बाद फिर अफगानिस्तान और दक्षिणी चीन–हिंद के रास्ते 645 ई. में चीन वापस पहुँचे तथा जीवन के शेष दिन साथ ले गई पांडुलिपियों के अनुवाद में बिताएं।

ह्वेनसांग को भारत तक पहुँचने में लगभग एक साल का समय लगा। वे कश्मीर से जालंधर, कुलुट तथा मथुरा होते हुए थानेश्वर पहुंचे। थानेश्वर में मतिपुर, अहिच्छत्र एवं सांकाश्य होते हुए 636 ई. के मध्य में उन्होंने कन्नौज में प्रवेश किया । कन्नौज से अयोध्या, प्रयाग, कौशांबी ,कपिलवस्तु, कुशीनगर, वाराणसी, वैशाली पाटलिपुत्र आदि स्थानों का भ्रमण किया । पाटलिपुत्र से चलकर बोधगया, फिर नालंदा, इसके बाद वे बंगाल, उड़ीसा धान्यकटक होते हुए पल्लवों की राजधानी कांची गए। कांची से आगे नहीं जा सके तथा उत्तर की ओर लौट पड़े। इस भ्रमण के दौरान हैं ह्वेनसांग ने पाटलिपुत्र में प्रसिद्ध विहारों एवं स्तूपों के दर्शन किए, बोधगया में बोधि वृक्ष की पूजा की तथा नालंदा में कोई डेढ़ वर्षो तक निवास कर बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया।ह्वेनसांग के विवरण से तत्कालीन समाज और संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अपने ग्रंथ में उन्होंने अनेक स्थानों के नाम दिए हैं , जिससे सातवीं सदी का भूगोल समझने में भी सहायता मिलती है। कई स्थानवाची नामों से हमें अन्य सूचनाएं भी मिलती है । मिसाल के तौर पर, गाजीपुर को ह्वेनसांग ने "चान-चू" कहा है। किसी ने "चान-चू" का अर्थ "बहादुरों का देश" कहा है तो किसी ने "गर्जनापति" कहा है और किसी ने "गाधि क्षेत्र" भी कहा है। दरअसल "चान-चू" चीनी भाषा के दो शब्दों का मेल है ।चान का अर्थ "विपस्सना"और चू का अर्थ "क्षेत्र" होता है। इस प्रकार "चान-चू" का पूरा अर्थ "विपस्सना का क्षेत्र" हुआ। गाजीपुर कभी विपस्सना का मुख्य क्षेत्र हुआ करता था । सारनाथ के निकट होने के कारण यह क्षेत्र बौद्ध स्थलों से भरा पूरा था। चान का एक उच्चारण रीति चेन है । चान/चेन से चीन में एक बौद्ध- पंथ "चा" "आन" का प्रचलन है । चान वस्तुतः बौद्ध शब्दावली "झान" का बदला हुआ चीनी रूप है, जिससे संस्कृत में "ध्यान" बना है । ह्वेनसांग सातवीं सदी में जब गाजीपुर आए थे, तब गाजीपुर के क्षेत्र में अनेक बौद्ध केंद्र थे, साथ ही संघाराम और स्तूप भी थे।

अनेक इतिहास -ग्रंथों एवं विवरणों में चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग की भारत यात्रा संबंधी संदर्भों का गलत इस्तेमाल भी किया गया है। मिसाल के तौर पर ह्वेनसांग ने प्रयाग में कुंभ मेले का कहीं जिक्र नहीं किया है। बावजूद इसके कुंभ मेले के इतिहास को भी ह्वेनसांग से जोड़ दिया गया है। दरअसल ह्वेनसांग ने प्रयाग में जिस आयोजन जिक्र किया है, वह मूल रूप से बौद्ध आयोजन था। प्रयाग में बौद्धों की महादान भूमि का वर्णन करते हुए ह्वेनसांग ने लिखा है कि तब प्रयाग का संगम 10 ली के घेरे में विस्तृत था। दूर-दूर तक बालू फैला हुआ था। भूमि ऊँची और सुहावनी थी तथा इस महादान भूमि पर दान किए जाने का शुभारंभ बुद्धदेव की मूर्ति के अलंकरण से होता था। जैसा कि मैंने कहा ह्वेनसांग कांची गए थे। कांची के बारे में उन्होंने लिखा है कि यह राज 6000 ली में फैला हुआ है। राजधानी कांची है, जिसका क्षेत्रफल 30 ली है। भूमि उपजाऊ है। फल–फूल बहुत होते हैं। लोग साहसी और ईमानदार हैं । भाषा और लिपि मध्य भारत से थोड़ी अलग है। राज्य में कई सौ संघाराम है ।10,000 महायानी बौद्ध भिक्खु है। अनुवादक ठाकुर प्रसाद शर्मा ने बौद्ध भिक्खु का अनुवाद "साधु" कर दिया है। अनुवाद "साधु" करने से भ्रम की गुंजाइश बनती है । यदि 10,000 साधु के आगे ह्वेनसांग स्पष्ट नहीं करते हैं कि वह महायानी बौद्ध थे, तब इसे हिंदू साधु से भी जोड़ा जा सकता था। इसलिए अनुवादक एक-एक शब्द जाँच- परख कर रखना चाहिए था।

ह्वेनसांग का यात्रा वृतांत न सिर्फ भारत की आंतरिक स्थिति से हमें अवगत कराता है बल्कि भारत- चीन संबंधी अनेक मामलों को भी उजागर करता है। तब सम्राट हर्षवर्धन गंजाम प्रदेश जीतकर कन्नौज लौट रहे थे, उन्होंने भास्कर वर्मा को ह्वेनसांग के साथ कजंगल बुलाया था और फिर दोनों कन्नौज चल पड़े। हर्ष ने ह्वेनसांग से कहा कि मैंने देवपुत्र चिनवाङ के बारे में सुना है, जिन्होंने देश को अराजकता और बर्बादी की दशा से व्यवस्था और समृद्धि में पहुँचाया है। उनकी संतुष्ट प्रजा चिनवाङ के विजयों के गीत गाती है। चिनवाङ सम्राट ताइचुङ का कुमार–जीवन का पाद था। कुमार – जीवन में उन्होंने एक भयंकर विद्रोह को दबाया था ,जिसकी याद में उनके सैनिक ने नाच के साथ के गाने का गीत भी रचा था। इससे विदित होता है ताइचुङ के विजयों का एशिया में कैसा प्रभाव हुआ था। उस युग तक चीन के लोग ईख के रस को खांड और मिसरी बनाना नहीं जानते थे । वे मिसरी को मधुशिला (शहद पत्थर) कहते थे। ताइचुङ ने भारत में अपने आदमी को मिसरी बनाना सीखने के लिए भेजे। चीन के लोग भारत के रंग-बिरंगे मलमल के कपड़ों से चकित होते थे। वे उन्हें उषा का भाप कहते थे। इधर भारत के लोग भी चीनांशुक (चीनी के रेशमी कपड़े) को बहुत चाहते थे। इस प्रकार हम पाते हैं कि ह्वैनसांग के यात्रा वृत्तांत से पता चलता है कि दोनों देशों के बीच विद्या का आदान-प्रदान होता था।

लेखक - परिचय

डॉ. **राजेंद्रप्रसाद सिंह**

अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भाषावैज्ञानिक तथा इतिहास - मर्मज्ञ

पुस्तकें : 1. भाषा का समाजशास्त्र 2. भारत में नाग परिवार की भाषाएँ 3. हिंदी की लंबी कविताओं का आलोचना - पक्ष 4. काव्यतारा 5. हिंदी साहित्य का सबाल्टर्न इतिहास 6. हिंदी साहित्य प्रसंगवश 7. आधुनिक भोजपुरी के दलित कवि और काव्य 8. भोजपुरी के आधुनिक भाषाशास्त्र 9. कहानी के सौ साल 10. साहित्य में लोकतंत्र की आवाज 11. ओबीसी साहित्य विमर्श 12. हिंदी का अस्मितामूलक साहित्य 13. दलित साहित्य का इतिहास - भूगोल 14. भाषा, साहित्य और इतिहास का पुनर्पाठ 15. भोजपुरी - हिंदी - इंग्लिश लोक शब्दकोश 16. पंचानवे भाषाओं का समेकित पर्याय शब्दकोश 17. दि रि - राइटिंग प्रॉब्लम्स आफ भोजपुरी ग्रामर, डिक्शनरी एंड ट्रांसलेशन 18. लैंग्वेजेज आफ दि नाग फ़ैमिली इन इंडिया 19. भोजपुरी भाषा, व्याकरण आ रचना 20. भोजपुरी व्याकरण, शब्दकोश आ अनुवाद के समस्या 21. भोजपुरी के भाषाशास्त्र 22. ओबीसी साहित्य के विविध आयाम 23. इतिहास का मुआयना 24. खोए हुए बुद्ध की खोज 25. बौद्ध सभ्यता की खोज 26. शहीद जगदेव प्रसाद की दास्तान 27. जगदेव प्रसाद वाङ्मय 28. हिंदी की लंबी कविताओं पर बातचीत 29. चिनगारी 30. सम्राट अशोक का सही इतिहास 31. हिंदी के प्रमुख भाषावैज्ञानिक, बोलियाँ एवं अस्मितामूलक भाषाविज्ञान 32. नए औजार से कबीर की खुदाई आदि।

सम्मान : बिहार सरकार के डॉ. ग्रियर्सन पुरस्कार (2016 -17) से सम्मानित।

संप्रति : प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, एस. पी. जैन कालेज, सासाराम (बिहार)

संपर्क : इन्कम टैक्स आफिस के पास, गाँधी नगर, सासाराम – 821115 (बिहार)